श्रीपरमात्मने नमः

सरल जैन धर्म

पहला भाग

पाठ १.

णमोकारमन्त्र

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अर्थ—इस लोकमें सब अरहन्तोंको नमस्कार हो, सब सिद्धों को नमस्कार हो, सब आचार्योंको नमस्कार हो, सब उपाध्यायोंको नमस्कार हो और सब साधुओंको नमस्कार हो।

इस मन्त्रमें ३५ अक्षर और ५८ मात्राएं हैं।

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी कहे जाते हैं। परमेष्ठीका अर्थ "उत्तम पदमें विराजमान" है।

णमोकारमन्त्रका माहात्म्य

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

अर्थ—यह णमोकारमन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है और सब मंगलोंमें पहला मंगल है।

णमोकारका अर्थ नमस्कार अथवा हाथ जोड़कर मस्तक झुकाना है। इस मंत्रमें अरहन्त आदि पांच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है। इसलिये इसे णमोकार अथवा नमस्कार मन्त्र कहते है।

यह नमस्कार मन्त्र अनादिकालसे चला आया है। हरेक शुभ काम करनेसे पहिले यह मंत्र अवश्य बोलना चाहिए।

प्रश्न

१. णमोकार मन्त्रका शुद्ध उच्चारण करो।

२. इसे णमोकार मन्त्र क्यों कहते है?

३. णमोकार मन्त्रमें किसको नमस्कार किया गया है?

४. परमेष्ठी कितने होते है? उनके नाम बताओ। इन्हें परमेष्ठी क्यों कहते हैं?

५. णमोकार मन्त्रका माहात्म्य क्या है?

पाठ २

२४ तीर्थंकरोंके नाम

१ ऋषभ, २ अजित, ३ संभव, ४ अभिनन्दन, ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चन्द्रप्रभ, ९ पुष्पदन्त, १० शीतल ११ श्रेयांस, १२ वासुपूज्य, १३ विमल, १४ अनन्त, १५ धर्म, १६ शान्ति, १७ कुन्थु, १८ अर, १९ मल्लि, २० मुनिसुव्रत, २१ नमि, २२ नेमि, २३ पार्श्व और २४ महावीर।

इनमें पहले ऋषभनाथको आदिनाथ, नववें पुष्पदन्तको सुविधिनाथ, और चौबीसवें महावीर स्वामीको वीर, अतिवीर, सन्मति और वर्द्धमान भी कहते हैं।

तीर्थंकर वे कहलाते है जो उत्तम धर्मका प्रचार करते हैं और उत्तम धर्म वह है जो नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्य गति के दुःखोंसे हटाकर मोक्षके सुखमें पहुंचावे।

प्रश्न

१. तीर्थंकर कितने होते है ?

२. नववें, पन्द्रहवें, तेईसवें, बारहवें और सातवें तीर्थंकरों के नाम बताओ।

३ ऋषभनाथ, पुष्पदन्त और महावीर स्वामीके दूसरे नाम बताओ।

४. इन्हें तीर्थंकर क्यों कहते है ?

५. अजित, शीतल, शान्ति, नमि और सन्मति कौनसे तीर्थंकर हैं ?

पाठ ३

देवस्तुति

प्रभु ! पतित-पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी॥
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिण्यो हितकार जी॥१॥

भव-विकट-वनमें करम वैरी, ज्ञान-धन मेरो हर्यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्यो॥
धन घड़ी यो, धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो॥२॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य्य अनंत गुणजुत, कोटि रवि छवि को हरैं॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरख ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥३॥

मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तुव चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन ! सुनहु तारण-तरण जी॥
जांचू नहीं सुरवास पुनि नर-राज परिजन साथ जी।
"बुध" जाचहूं तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥४॥

नोट—अध्यापकोंको इस विनतीका अर्थ समझा देना चाहिए। यह विनती मन्दिर मे नमस्कार मंत्र बोल कर और चौबीस तीर्थंकरोंको नमस्कार कर बोलना चाहिये। बोलते हुये हाथ जोड़ना चाहिये और भगवान्‌की वीतराग मूर्त्तिकी तरफ

देखना चाहिए । विनतीका अर्थ समझना चाहिए जिससे भगवान्‌की भक्तिमें मन लगा रहे और हम भी उनके समान बन सकें ।

पाठ ४

जैन कौन हो सकता है ?

सुरेश—भाई रमेश ! जैनका क्या मतलब है ?

रमेश—जो जैनधर्म्मको पाले उसे जैन कहते है ।

सुरेश—जैनधर्म्म किसे कहते है ?

रमेश—जैनोंका धर्म्म, जैन धर्म्म कहलाता है ।

सुरेश—जैनका मतलब क्या है ?

रमेश—जो जिन देवताको माने ।

सुरेश—जिन किसे कहते हैं ?

रमेश—जो गुस्सा, लोभ, घमण्ड, लालसा और छल-कपट, ईर्ष्या आदि सब दुर्गुणोंको पूरी तरह जीत ले ।

सुरेश—उन दुर्गुणोंको जीतने वाले कौनसे हैं ?

रमेश—ऋषभ आदि चौबीस तीर्थङ्कर । जो इनको देवता माने और उनके द्वारा कहे हुये धर्म्मका पालन करे उन्हें जैन कहते हैं ।

सुरेश—लेकिन तीर्थंकर तो क्षत्रिय थे और आजकलके जैन प्रायः वैश्य हैं ।

रमेश—इससे कोई मतलब नहीं, जैन धर्म्म तो सभी प्राणी पाल सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही नहीं हाथी, घोड़ा, बैल, सिंह और मेंढक आदि पशु-पक्षी सभी जैनधर्म्मकी शरण ले सकते हैं। यह तो कल्पवृक्ष है। इसकी छायामें सबको सुख मिलता है। सब अपनी-अपनी भलाई कर आत्माको पवित्र बना सकते हैं।

प्रश्न

१. जैनधर्म्म किसे कहते हैं ?
२. जैनी किसे कहते है ?
३. जैनधर्म्म कौन धारण कर सकता है।
४. जैनी वैश्य होते हैं न ?
५. तीर्थंकर क्षत्रिय थे या वैश्य ?

पाठ ५

धर्म्मका स्वरूप

सुरेश—दुनिया धर्म धर्म पुकारती है, धर्म क्या चीज है ? खाना, पीना और मौज करना ही न ?

रमेश—नहीं, यह धर्म नहीं है। धर्म वह है जो जीने, मरने बुढ़ापा भोगने और बीमारी आदिसे छुटकारा देवे।

सुरेश—यह क्या बड़ी बात है ? मर गये, फिर क्या तकलीफ ? फिर सुख ही सुख है।

रमेश—नहीं, ऐसे मरनेके बाद भी कहीं-न कही जन्म लेना पड़ता है और वहां तरह २ के दुःख उठाने पड़ते हैं। सच्चा सुख वही ह कि जिससे मरनेके बादमें कहीं शरीर नहीं धारण करना पड़े। जैसे तीर्थंकर वगैरह शरीर छोड़कर फिर शरीर नहीं धारण करते। वे ही सच्चे सुखी है। जैसे बीज जल जाता है फिर उस बीजसे अंकुर पैदा नहीं होता।

सुरेश—तो क्या किया जावे, जिससे सच्चा सुख मिले ?

रमेश—अच्छे काम करो। सब जीवोंपर दया करो, सबकी भलाई करो, छल-कपट मत करो किसीसे द्वेष-भाव मत करो, सबके लिये उदार बनो, राहसे चलो और दूसरोंको सच्चा बनानेके लिये कहो। यही सब सच्चा धर्म्म है। इसे ही ऋषभ आदि तीर्थंकरोंने धम बताया है और यही जैनधर्म्म कहलाता है।

पाठ ६
जीव और अजीव (जड़) में भेद

सुरेश—जीव किसे कहते है ?

रमेश—जीव उसे कहते है जिसमें ज्ञान हो, जो जान सकता हो, देख सकता हो।

सुरेश—जीवके कितने भेद होते हैं ?

रमेश—जीवके दो भेद होते हैं। मुक्तजीव और संसारी जीव। मुक्तजीव वे कहलाते हैं जो देखते जानते सब हैं लेकिन हमारी तुम्हारी तरह उनके शरीर और इन्द्रियां नहीं होतीं। उनके कर्म्मोंका नाश हो चुका है। वे संसारमें लौटकर नहीं आ सकते। इसलिये उन्हें जन्म और मरण आदिका किसी तरहका दुःख नहीं होता।

संसारी जीवोंके शरीर और इन्द्रियां होती हैं। ये कर्म्मोंसे बंधे हुये है और जीने मरने आदिके दुःख उठाते हैं। जैसे देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यंच (हाथी, घोड़ा, बैल, बकरी, तोता, चूहा, भौंरा, चींटी, शंख और वृक्ष वगैरह) ये सब संसारी जीव कहलाते हैं।

इनके सिवाय मिट्टी, कागज, पत्थर, लकड़ी, और रबर वगै-के खिलौने, जिनके बनावटी हाथ मुंह, नाक, कान, और आंखे बनी रहतीं हैं, इनमें ज्ञान नहीं होती है। इसलिये ये अजीव कहलाते हैं। अपने आप चल फिर नहीं सकते। ये सब खिलौने ईंट, पत्थर, दावात, कलम, टेबल, ग्लास, टोपी, पंखा, और घड़ी वगैरहके समान अजीव हैं। इसलिये समझना चाहिये कि जिनमें ज्ञान न हो उन्हें अजीव कहते हैं।

प्रश्न

१. जीव कितने प्रकारके होते हैं ?

२. जीव किसे कहते हैं ?

३. संसारी जीव किसे कहते हैं ?

मालूम पड़ेगा। इसी तरह गरम और हलका वगैरहका ज्ञान भी सब शरीरसे होता है।

रसना इन्द्रियसे स्वाद जाना जाता है। पेड़ा मीठा, नीबू खट्टा, नीम कड़वा, मिर्चे चिरपरी और आंवला कषायला होता है। अर्थात् खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा और कषायला स्वाद, रसना इन्द्रियसे जाना जाता है।

घ्राण इन्द्रियसे— सूँघा जाता है। सुगन्ध (खुशबू) गुलाब, चमेली केतकी, कनेर, आदिके फूलोंमें आती है और दुर्गन्ध मट्टीके तेल नोमके तेल, मैलीकी नालियों और फिनेलकी गोलियों वगैरहमें आती है। इसलिये घ्राण इन्द्रियसे सुगन्ध और दुर्गन्ध जानी जाती है।

चक्षुइन्द्रियसे—हरेक प्रकारके रंगका ज्ञान होता है। काला, पीला, नीला, लाल,सफेद, जपांच रंग होते हैं। सोना पीला, मोरका पंख नीला, खून लाल और चूना, दूध, दही आदि सफेद होते है।

सुरेश—हरा, बैगनी वगैरह रंग भी देखे जाते है तो रंग पाच ही कैसे हुये ? बहुत तरहके रंग होत हैं।

रमेश—ठीक है, उन पांच रंगोंके सिवाय जितने भी रंग दिखाइ देते है वे सब उन रगोंके मेलसे तैयार होते हैं। जैसे नीला और पीला मिलाकर हरा होता। इसी तरह सबको समझना चाहिये।

कर्णइन्द्रियसे—आवाज सुनाई देती है। कोयल मीठी बोलती है, गधा रेंकता है, बांसुरी बजती है और कौवा काँय कांय करता हैं। यह सब शब्द कर्ण इन्द्रियसे मालूम होता है।

प्रश्न

१. इन्द्रियां कितनी होती हैं उनके नाम बतओ ?

२. स्पर्शन इन्द्रियको अंगुलिसे बताओ ?

३. रसना इन्द्रियसे कितने प्रकारके स्वाद मालूम होते हैं ?

४. घ्राण इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

५. चक्षु इन्द्रियसे कितने रंग दिखाई देते है ? हरा, बेंगन वगैरह रंग भी होते हैं फिर रंग पांच ही क्यों होते है?

६. कर्ण इन्द्रियका दूसरा नाम क्या है ? कर्ण इन्द्रियसे क्या काम लिया जाता है ?

७. हारमोनियम बजता है, कोयला काला है, चम्पामें सुगन्ध है, रुई हलकी है और दूध मीठा तथा सफेद है। इनमें किस इन्द्रियसे काम लिया गया है ?

पाठ ८.

जीवकी जातियां

संसारी जीव पांच तरहके होते हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

१ एकेन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिनके केवल एक ही स्पर्शन (शरीर) इन्द्रिय हो। जैसे पृथ्वी (जमीन), जल (पानी)

वायु (हवा), तेज (अग्नि) और वनस्पति (पेड़ वगैरह)

२ द्वीन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां हों जैसे—लट, शंख, जोंक और केंचुआ वगैरह।

त्रीन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिनके स्पर्शन रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां हों। जैसे चिउंटी, मकोड़ा, खटमल और जूं वगैरह।

४ चतुरिन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु ये चार इन्द्रियां हों। जैसे मक्खी, मच्छर, ततैया और भौंरा वगैरह।

५ पंचेन्द्रिय जीव—उन्हें कहते हैं जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांचों इन्द्रियां हों। जैसे देव, मनुष्य, नारकी तथा हाथी, घोड़ा, गाय, कबूतर, चूहा, हरिण वगैरह तिर्यंच।

इनमेंसे स्पर्शन इन्द्रियवालों अर्थात् एकेन्द्रिय जीव (गीली मिट्टी, कुएका पानी, जलती आग, ठंडी हवा और वृक्ष वगैरह) को स्थावर जीव कहते हैं।

दो इन्द्रियां, तीन इन्द्रियां और चार इन्द्रियवाले जीव विकल-त्रय कहलाते हैं।

दो इन्द्रियां, तीन इन्द्रियां, चार इन्द्रियां और पाँच इन्द्रिय जिन जीवोंके होती हैं वे त्रस जीव कहलाते हैं।

पांच इन्द्रिय वाले जीवके पहली चार और चार इन्द्रिय वालेके पहिली तीन इन्द्रियां अवश्य होती हैं। इसी तरहसे सब समझना चाहिए।

प्रश्न

१. एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

२. द्वीन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

३. त्रीन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

४. चतुरिन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

५. पंचेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

६. स्थावर जीव किसे कहते हैं ?

७. त्रस जीव किसे कहते हैं ?

८. चार इन्द्रियों वाले जीवके कौन-कौन इन्द्रियां होती हैं ?

९. कर्ण इन्द्रिय वाले अन्धेके कितनी इन्द्रियां होती हैं ?

१०. इनमेंसे किस जीवकी कितनी इन्द्रियां होती हैं ? और साथही ये त्रस हैं या स्थावर ? पेड़, शंख, आदमी, चींटी, हाथी चूहा, नारकी, मोर, देव, कबतर, बिल्ली, गुलाबका पौधा, जलती आग और पत्थरकी सीढ़ियां ।

११. विकलत्रय जीव किसे कहते हैं ? उनके चार-पांच नाम बताओ ।

पाठ ९

बाग

(पं० रामलखनजी त्रिपाठी)

कितना अच्छा बाग हमारा, लगा बीचमें है फव्वारा ।
इसमें लगे अनेकों फल हैं, एकसे एक सभी बढ़कर हैं ॥

तरह तरहकी चिड़ियां आतीं, फुर फुर करतीं चुहल मचाती ।
फूलोंसे सुगन्ध है आती, रोगोंको है दूर भगाती ॥
भौंरे भन भन है भन्नाते, फूलोंमें घुस-घुस हैं जाते ।
तितली रानी जब-जब आती, फूलोंका रस ले-ले जाती ॥
बाबूजीने बाग लगाया, सींच-सींच कर इसे बढ़ाया ।
राही× जब हैं अति थक जाते, तब इसमें आकर सुस्ताते ॥
कितना अच्छा बाग हमारा, इन्द्रबागसे बढ़कर प्यारा ।

प्रश्न

१—फव्वारेका पानी, फल, चिड़ियां, भौंरे, फूल और तितली इनमें कितनी और कौन-कौन इन्द्रियां होती हैं ।

२—बागमें कौन कौन जड़ पदार्थ देखते हो ?

३—किस किस जीवने किस किस इन्द्रियसे क्या क्या काम किया ?

× मुसाफिर—पथिक ।

नमः श्री परमात्मने ।

सरल जैन धर्म

दूसरा भाग

पाठ १

देव-स्तुति

(कविवर पं० दौलतराम कृत)

(दोहा)

सकल-ज्ञेय-ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि-रज-रहस-विहीन ॥१॥

(चौपाई)

जय वीतराग विज्ञानपूर । जय मोहतिमिरको हरन सूर ।
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार । दृग सुख वीरज मंडित अपार ॥२॥
जय परम शान्त मुद्रा समेत । भविजनको निज अनुभूति हेत ।
भवि-भागन वच-जोगेवसाय । तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥ ३॥
तुम गुण चिन्तित निज-पर विवेक । प्रगटै विघटै आपद अनेक ।

तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ५
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप। परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभविभाव अभाव कीन। स्वाभाविक परिणतिमय अछीन
अष्टादश दोष विमुक्त धीर। स्वचतुष्टयमय राजत गम्भीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत। नव केवल-लब्धि-रमा धरंत ॥६॥
तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागरमें दुख छार वारि। तारन को और न आप टारि ॥७॥
यह लखि निज दुख-गद-हरण काज। तुमही निमित्तकारण इलाज
जाने, तातैं मैं शरण आय। उचरों निज दुख जो चिरलहाय ॥८॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप। अपनाये विधि-फल पुण्य पाप।
निजको परको करता पिछान। परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥९॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जान वारि।
तन परिणतिमें आपो चितार। कबहूं न अनुभवो स्वपद सार ॥१०
तुमको बिन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नरसुर गति मंझार। भव धरिधरि मर्‌यो अनन्त बार११
अब काल-लब्धि-बलतैं दयाल। तुम दरशन पाय भयो खुशाल।
मन शान्तभयो मिटि सकल द्वंद। चाख्यो स्वातमरस दुख-निकंद१२
तातैं अब ऐसी करहु नाथ। बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगणको नहिं छेव देव। जगतारनको तुव विरदएव ॥१३॥
आतमके अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन। सो करो होउं ज्यों निजाधीन ॥१४॥
मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रय-निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारजके कारण सु आप। शिव करहु हरहु मम मोह-ताप १५
शशि शान्तिकरन तपहरन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।

पीवत पियूष ज्यों रोग जाय। त्यों तम अनुभवतै भव नशाय ॥१६
त्रिभुवन तिहुँ काल मंझार कोय। नहि तुम बिन निज सुखदायहो।
मो उर यह निश्चय भयो आज। दुख जलधि-उतारन तुम जहाज १७

दोहा

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोग सम्हार ॥१८॥

शब्दार्थ—ज्ञेय=पदार्थ। अरिरजरहस -विहीन=घातिया कर्मों से रहित। दृग=दर्शन। विभ्रम=अज्ञान। स्वचतुष्टय=अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य ये आत्मा के चार गुण। गद=रोग। विधि=कर्म। मृगतृष्णा-पानीके समान मालूम देने वाला घास या रेत। दुखनिकन्द=दुःख दूर करने वाला। छेव=अन्त। वरद=यश। पियूष=अमृत। गुणगणमणि=गुण समूह रूपी रत्न। गणपति (ति)=गणधर।

प्रश्न

१. भगवान्के गुणोंका वर्णन करो ?
२. संसारमें जीव क्यों भटकता है ?
३. आत्माका हित और अहित क्या है ?
४. संसारसे पार होनेका क्या उपाय है ?
५. भगवान्से भक्त क्या चाहता है ?

पाठ २

दर्शन-प्रतिज्ञा

किसी गांवमें एक सेठ रहते थे। वे अपने धन्धे और दूकान-दारीमें इतने फंसे रहते कि कभी न तो मंदिर जाते, और न कभी भगवान्के दर्शन करते। एक दिन एक मुनि महाराज उस गांवमें पधारे। सबकी देखादेखी इन सेठजीने भी मुनिको अपने घर विधिपूर्वक आहार कराया। मुनि महाराजका नियम था कि वे जिसके यहां भोजन करते उससे किसी न किसी तरहकी प्रतिज्ञा जरूर करा लेते। मुनि महाराजके सामने सेठजी ने दर्शन करनेकी प्रतिज्ञा की।

सेठके मनकी बात मुनि समझ गये। सेठसे मुनिने कहा— अच्छा, तुम्हारी दूकानके सामने जो रहता हो, उसीके दर्शन करनेकी प्रतिज्ञा करो। नियमसे, पहिले उसके दर्शन करो, बाद में और कोई काम।

सेठजीकी दूकानके सामने एक कुम्हार रहता था। सेठजी इसीको सबेरे सबसे पहिले देखते और तब अपनी दुकान खोलते।

एक दिन कुम्हार मिट्टी लाने, सबेरे होने के पहिले ही गांवके बाहर चला गया। सेठजी ने जब कुम्हारको घर नहीं देखा तो मुनिकी बात याद आई। कुम्हारिनसे पूछकर सेठजी वहीं पहुँचे जहां कुम्हार मिट्टी खोद रहा था। सेठजी ने देखा कि कुम्हारको मिट्टी खोदते-खोदते मोहरोंसे भरा हुआ एक घड़ा मिला है और कुम्हार वे मोहरें गिन रहा है।

सेठजीको देखते ही कुम्हारको डर लगाकि अब ये मोहरें मुझे न मिल सकेंगी। सेठ जाकर राजासे कह देगा और सारी मोहरें छीनली जायंगी। ऐसा विचार-कर उसने सेठजीको आधी मोहरें देते हुये कहा—सेठजी ! ये मोहरें आप भी ले लीजिये। मिट्टी खोदते-खोदते मिली हैं।

मोहरें लेकर सेठजी प्रसन्न हुए और घर आकर सोचने लगे कि मुनि महाराज ने सच कहा था। एक साधारण कुम्हारके दर्शन करनेकी प्रतिज्ञाके फलमें मुझे आज इतनी मोहरें मिल गयीं यदि मैं भगवानके दर्शन करनेकी प्रतिज्ञा कर लेता तो इससे कई गुना लाभ होता। ऐसा विचार करते-करते सेठजीका हृदय भगवानके दर्शनके लिये उतावला हो उठा। इसके बाद प्रतिदिन नियमसे सेठजी जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करने लगे। फल यह हुआ कि सेठजीका व्यापार दिन दूना रात चौगुना चमकने लगा और सेठजी बड़े सुखसे रहने लगे। भगवानके दर्शन करनेसे क्या नहीं प्राप्त हो सकता ?

----०O०----

पाठ ३

आलोचनापाठ

दोहा—पंच[१]परमपदको सदा, करता रहूँ प्रणाम।
चौबीसों जिनराजके[२] गुण गाऊं अविराम[३] ॥१॥

१ पंच परमेष्ठी। २ तीर्थंकर। ३ सदा।

प्रतिदिन कर मै १आलोचन। २शिव पाऊं संकट-३मोचन।
बनते नित दोष घनेरे। दिन मध्य व सांझ सबेरे ॥२॥
इससे हम शरण तुम्हारे। ये मेंटो दुख सारे।
दीनों के नाथ तुम्हीं हो। अशरण के शरण तुम्हीं हो ॥३॥
दुखियों को मैंने सताया। उनके दुख मे सुख पाया।
उनको बहु दुःख दिलाया। फिर भी मैं नाहिं लजाया ॥४॥
सच बोलना पाप समझ कर। ठगता परको हंस-हंस कर।
चोरी का द्रव्य जु आया। उसको रख पाप कमाया ॥५॥
अरु शील रतन मे खोकर। नचता बहु परिग्रह होकर।
कर क्रोध, किया मन माना। माया में हित पहिचाना ॥६॥
लालच को गले लगाया। मृदुता को दूर भगाया।
मैं देव कुदेव न समझा। सबके जालों में उलझा ॥७॥
नदियों में पुण्य समझ कर। नित स्नान किया मल-मल कर।
गुरु मान नहीं गुण गाया। जिन शास्त्र नहीं सुन पाया ॥८॥
मन इन्द्रिय के बस होकर। करता, अपना हित खोकर।
मनमाना निश दिन खाया। हिंसा का पाप कमाया ॥९॥
पीकर छाने बिन पानी। कर डौठा मैं अनजानी।
ईर्ष्या कर चित्त जलाया। विद्या-मद मे भरमाया ॥१०॥
प्रभुता-धन मद का प्याला। पीकर हूं मैं मतवाला।
जिन-दर्शन करना भूला। झूला मैं पाप का झूला ॥११॥

---

१ भगवान् के सामने अपने दोषों का प्रगट करना। २ मोक्ष
३ कर्मों के दुःख को दूर करने वाले।

करुणा का भाव न जागा। समता में चित न पागा।
मैत्री कर पुण्य न पाया। कर दान नहीं हरषाया ॥१२॥

परका उपकार न बनता। सुख में इस हेतु कठिनता।
प्रभु मेरी ऐसी मति हो। शुभ कर्म करूं शुभ गति हो ॥१३॥

जिनधर्म्म का तेज बढ़ाऊं। सुखिया जग को मैं पाऊं।
सबके सुख में सुख मानूं। निज जन्म सफल तब जानूं ॥१४॥

दोहा

तुम हो२ शंकर३ विष्णु हो,४ ब्रह्मा५ बुद्ध जिनेश।
"विश्व" ६जाल काटो, पतित मैं हूँ, तुम पतितेश७ ॥१५॥

प्रश्न

१—आलोचना किसे कहते हैं ?
२—अपने दोष प्रगट करो ?
३—आलोचना का क्या फल है ?

---

१ प्रभावना। २ सच्चा सुख देने वाले। ३ उत्तम गुणोंको धारण करने वाले। ४ मोक्ष का मार्ग बताने वाले। ५ सच्चा ज्ञान धारण करने वाले। ६ आठों कर्म रूपी जाल। ७ संसार रूपी समुद्र में डुबों को पार करने वाले।

पाठ ४

स्थावर जीवोंके भेद

स्थावर जीवोंमें स्पर्शन इन्द्रिय होती है। ये अपनी तरह चल फिर नहीं सकते, अपने स्थान पर रहते हैं और बढ़ते रहते हैं। यह बता चुके हैं। अब उसके भेद बताते हैं:—

१. पृथ्वी—जमीन ही जिसका शरीर हो, मिट्टी पहाड़ और सोना, चाँदी, अभ्रक आदि पदार्थ। जब ये खानमें होते हैं ये सब पृथ्वीकायिक जीव कहलाते हैं।

२. जल—जिनका शरीर जल ही हो उन्हें जलकायिक जीव कहते हैं। जैसे—जल, ओला, ओस वगैरह।

३. तेज—जिनका शरीर अग्नि ही हो उन्हें अग्निकायिक जीव कहते हैं। जैसे दीपककी लौ और आगकी लौ आदि।

४. वायु—जिसका शरीर वायुही हो उसे वायुकायिक जीव कहते हैं जैसे—हवा।

५. वनस्पति—जिसका शरीर वनस्पति ही हो उसे वनस्पति कायिक कहते है। जैसे—पेड़, बेल, गुलाब, चमेली वगैरह के पोधे, जड़ी बूटी वगैरह।

ये पांचोंही प्रकारके स्थावर जीव दो तरहके होते हैं—सूक्ष्म और बादर।

सूक्ष्मकायजीव—उन्हें कहते हैं जो किसी पदार्थसे न रुक सकें और न वे किसी पदार्थको रोकें। ये जीव दिखाई नहीं देते।

बादरकायजीव—उन्हें कहते हैं जो दूसरे पदार्थोंसे रुक सकें और दूसरे पदार्थोंको रोक सकें।

प्रश्न

१. स्थावर जीव किसे कहते है?
२. स्थावर जीव कितने प्रकारके होते हैं?
३. स्थावर जीवोंकी कौनसी इन्द्रियां होती हैं?
४. स्थावर जीव चलते फिरते हैं या एक जगह रहते हैं?
५. सुनारकी दुकानका सोना, मकानमें लगा पत्थर, वैद्यके यहांकी अमरबेल, ओस, बिजलीका प्रकाश और आगकी लौ इनमें किस २ में इन्द्रियाँ हैं और किस २ मे नहीं?

६. सूक्ष्मकायजीव किसे कहते है?
७. बादरकायजीव किसे कहते हैं?

पाठ ४

वर्त्तमान चौबीस तीर्थंकरोंके चिन्ह

वृषभनाथका१ वृषभ* सुजान,
अजितनाथके२ हाथी मान।

---

*बैल।

संभव ३ जिनके घोड़ा कहा,
अभिनन्दन४ पद बन्दर लहा ॥१॥
सुमतिनाथके५ चकवा जोय,
पद्मप्रभुके६ कमल जु होय।
जिन सुपार्श्वके७ साँथिया कहा,
चन्द्रप्रभ८ पद चन्द्रजु लहा ॥२॥
पुष्पदन्त९ पद मगर पिछान,
कल्पवृक्ष पद शीतल१० मान।
श्री श्रेयांस११ पद गैंडा होय,
वासुपूज्य१२ के भैंसा जोय ॥३॥
विमलनाथ१३ पद सूकर× मान,
अनन्तनाथ१४ के सेही जान।
धरमनाथ१५ के वज्र कहाय,
शान्तिनाथ१६ के हरिण सहाय।
कुन्थुनाथ१७ के पद अज÷चीन,
अरजिन१८ के पन चिन्ह जु मीन+।
मल्लिनाथ१९ पद कलशा लहा,
मुनिसुव्रत२० के कछुआ कहा ॥४॥
नीलकमल नमि२१ जिनके होय,
नेमिनाथ२२ पद शंख जु जोय।
पार्श्वनाथ २३ के सर्प* जु कहा,
वर्द्धमान२४ पद सिंह जु लहा ॥ ६ ॥

×सूअर। ÷बकरा। +मछली। *सांप।

बालको! "तीर्थ"का मतलब धर्म और "कर" का मतलब करनेवाले। इसलिये जो संसारी जीवोंको धर्मका उपदेश करे उसे अरहन्त परमेष्ठी अथवा तीर्थंकर कहते हैं।

अरहन्त—परमेष्ठीको प्रतिमाओं पर चिन्ह होते हैं। इन चिन्होंसे मालूम होता है कि कौन भगवान् की प्रतिमा है। सबके चिन्ह ऊपर दे दिये गये हैं। इन तीर्थंकरोंके शरीर में अनेक चिन्ह होते है। जब तीर्थंकरोंका जन्म होता है तब इन्द्र सुमेरु-पर्वत पर उनका अभिषेक करता है तब वह तीर्थंकरका नाम रखता है। और दाहिने पविके तले जो पहले चिन्ह दिखाई देता है, बता देता है। यही चिन्ह तीर्थंकरोंके आसन पर रहता है।

प्रश्न

१. तीर्थंकर किसे कहते हैं? नवमें, पन्द्रहवें और तेईसवें तीर्थंकर का नाम और उनका चिन्ह बताओ।
२. जिन २ तीर्थंकरोंके अजीव चिन्ह होते हैं बताओ?
३. चिन्ह कौन नियत करता है और न होनेसे क्या हानि है?
४. वासुपूज्य, चन्द्रप्रभ, सुपार्श्व, नमि और पार्श्वनाथ भगवान् के नाम बताओ?
५. कमल, नीलकमल, सांथिया, सर्प, चकवा, बैल और सिंह ये किन तीर्थंकरोंके चिन्ह हैं?

पाठ ६

पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवोंके भेद

हाथी, चील, मछली वगैरह जिन तिर्यंच जीवोंके पांच इन्द्रियां होती हैं उन्हें पंचेन्द्रिय-तिर्यंच जीव कहते है।

वे पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव तीन प्रकार के होते हैं:—
जलचर, थलचर और नभचर।

१. जलचर—जीव जलमें चलते फिरते और रहते हैं।

जैसे—मगर, मछली कछुआ और मेंढ़क आदि।

२. थलचर—जो जमीनपर चलें फिरें और रहें।

जैसे—हाथी, घोड़ा, बैल, बकरी, चूहा और सांप आदि।

३. नभचर—जो आकाशमें उड़ते हैं।

जैसे—गिद्ध, चील, कबूतर, मैना, तोता और चिड़ियां वगैरह।
इन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके सैनी और असैनी ये दो भेद भी होते हैं इनमें—

सैनीजीव—सोचते समझते है और इन्हें जो सिखाया जावे, सीख सकते हैं। जैसे कुत्ता, कबूतर, तोता, बन्दर, हाथी और घोड़ा वगैरह। कुत्ते अपने मालिक की भलाई करते हैं, मकानका पहरा देते हैं, चोरोंको भगा देते हैं। हाथी, शेर वगैरह कितनी समझदारीका काम करते हैं। सांप, बन्दर, रीछ और नादिया वगैरह को सिखाकर मदारी और भिखारी लोग अपना पेट भरते हैं।

असैनी जीव—सोच समझ नहीं सकते और न ये हाथी बन्दर आदिकी तरह सीखही सकते है। पानीका सांप और तोता इनमें कोई-कोई असैनी होते हैं।

इनके सिवाय एकेन्द्रिय जीवसे चार इन्द्रिय तकके सभी जीव असैनी कहलाते हैं।

प्रश्न

१. मुर्ग, कछुआ, मोर और सांप-नभचर, जलचर या थलचर इनमेंसे कौन क्या है ?
२. बहरा, अन्धा और पागल आदमी सैनी है या असैनी ?
३. चार सैनी और सात असैनी जीवोंके नाम बताओ ?
४. तुम्हारे साथियोंमेंसे कितने सैनी हैं और कितने असैनी ?
५. पेड़, शंख, भौंरा वगैरह सैनी हैं या असैनी ?

----o○o----

पाठ ७

गति

बालको! संसार नाटकके समान है। इसमें जो कभी राजा बनकर आता है वह कभी नौकर सामने आता है। कभी कोई स्वामी बन जाता है तो वह कभी सेवक बन जाता है। कभी स्त्री बनकर आता है तो वह कभी पुरुष बनकर आता है जबतक कर्मोंका साथ है तबतक यह जीव किसी न किसी गतिमें शरीर धारण करता रहता है इसलिये—

जीवकी विशेष अवस्थाको गति कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं:—मनुष्य, देव, तिर्यंच और नरक।

मनुष्य—जब कोई जीव मरकर मनुष्य-जन्म लेता है तो उसे मनुष्य गतिका जीव कहते हैं। जैसे हम, तुम, स्त्री, पुरुष बालक और वृद्ध वगैरह। यह गति सब गतियोंसे अच्छी है क्योंकि इसमें ही जीव अपना और संसारका भला कर सकता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। थोड़ा आरम्भ परिग्रह रखनेसे इस गतिमे जन्म होता है।

देव—जो जीव मरकर देव हो, इसे देवगतिका जीव कहते है। इनको अनेक प्रकारकी सुखकी सामग्री मिलती है। जो पूजा, दान और व्रत वगैरह करते है, वे देवगतिमें पैदा होते हैं। ये सैनी पंचेन्द्रिय होते हैं, यहां चरित्र नहीं पाला जा सकता।

तिर्यंच—जो जीव मर कर पशु-पक्षी वृक्ष आदिमें जन्म लेते हैं उन्हें तिर्यंच गतिका जीव कहते है एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके सभी पशु, पक्षी और वृक्ष वगैरह इसी गतिमें है। इनमे भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी और मार पीटे बांधे जाने बोझा ढोने आदिका बड़ा दुःख होता है। छल-कपट करनेसे इस गतिमें जन्म लेना पड़ता है।

नरक—जो जीव मरकर नरकमे पैदा होवे उसे नरक गति का जीव कहते है। उसमे दिनरात बड़ा दुःख उठाना पड़ता है। यहाँ कभी भूख, प्यास, नहीं मिट सकती। नरककी पृथ्वीके छूने से ही हजारों बिच्छुओंके काटनेके समान दुःख होता है। यहाँ गर्मी सर्दीका महान दुःख है। असुर जातिके देव एक दूसरे नारकीसे लड़ाई कराते रहते है। क्षण भरके लिये सुख नहीं मिलता।

और हजारों, लाखोंवर्षों तक ये दुख उठाने पड़ते हैं। बहुत आरम्भ और परिग्रह रखनेसे नरकगतिमें पैदा होना पड़ता है। इस गतिके जीव पंचेन्द्रिय सैनी होते हैं।

प्रश्न

१. मनुष्य गति किसे कहते हैं ? यह गति सब गतियोंसे अच्छी क्यों है ?
२. देवगति किसे कहते हैं ? यहां चारित्र क्यों नहीं पल सकता ?
३. तिर्यंचगति किसे कहते हैं ? इसमें क्या २ दुःख है?
४. नरकगति किसे कहते हैं ? इसमें जीवोंकी क्या दशा होती है ?
५. चारों गतियोंके जीवोंके कितनी इन्द्रियां होती है ? और क्या करनेसे किस गतिमें जाते हैं ?

पाठ ८

पाप

पाप—बुरे कामोंको पाप कहते हैं अर्थात् जिन कामोंके करनेसे दोनों लोकों में कष्ट पहुंचता है।

पाप पांच होते हैं :—हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह।

हिंसा—प्रमादसे अपने या दूसरेके प्राणोंका घात करना या मन दुःखाना हिंसा कहलाती है।

हिंसा करने वाले क्रूर, निर्दयी और महापापी कहे जाते हैं। जैसे अपने प्राण प्यारे है वैसे ही दूसरे को भी अपने प्राण प्यारे हैं। आत्मघात करना भी घोर पाप है। हिंसाके कई भेद होते हैं। हिंसा भारी पाप और अहिंसा महान् पुण्य है सब धर्मोंका मूल अहिंसा है।

झूठ—जिस बात या जिस चीजको जैसा देखा हो अथवा जैसे सुना हो उसको वैसा न कहना झूठ है। आपत्तिके समय, सच बोलनेसे अगर किसीकी जान जाती हो तो ऐसा सच भी नहीं बोलना चाहिए। जैसे चौराहे पर आकर हत्यारा "गाय किधर गई ?" पूंछे तो गाय उत्तर दिशामें गई है और तुमने कह दिया कि उत्तर दिशामें गई है तो तुम पापके भागी बनोगे, तुम्हें पूर्व, पश्चिम या दक्षिण दिशामें बतला देना चाहिए।

चोरी—किसीकी रखी, गिरो या धरोहर (गिरवी) रखी हुई चीज उसको न देना चोरी है। बिना दिये हुये किसीकी चीज अपने पास नहीं रखना चाहिये। चोरीका माल रख लेना या चुराकर दूसरेको देना चोरी ही है।

कुशील—पराई स्त्रीके साथ रमण करना और आचरण बिगाड़ने वाली बातें करना कुशील है अपनी लड़की, बहिन और माताके समान दूसरोंकी लड़कियों, बहिनों, माताओं और स्त्रियों को भी समझना चाहिये। बुरे उपन्यास पढ़ना, सिनेमा वगैरह देखना या बदमाश आदमी अथवा औरतोंके पास बैठना भी अच्छा नहीं है। ऐसा करनेसे शीलमें बट्टा लगता है।

परिग्रह—रुपया, पैसा, गेहूं कपड़ा मकान और बर्तन आदिसे मोह रखना और उनको इकट्ठा करनेमें लालसा रखना परिग्रह

है। मकान, नौकर और सवारी वगैरह आवश्यकतासे अधिक नहीं रखना चाहिए। अधिक परिग्रह रखना नरकका कारण है।

प्रश्न

(१) पाप किसे कहते हैं ?
(२) पाप कितने होते हैं और कौन २ से ?
(३) हिंसा किसे कहते हैं ?
(४) झूठ किसे कहते हैं ?
(५) चोरी किसे कहते हैं ?
(६) कुशील किसे कहते हैं ?
(७) परिग्रह किसे कहते हैं ?

पाठ ९

स्वास्थ्य

प्रिय बालको ! जीवन बहुमूल्य होता है। यदि अपने जीवन में कुछ नया काम कर सके अथवा पूर्वजोंकी मान-मर्यादा रख सके तो तुम्हारा जीवन सफल है; नहीं तो कीड़े मकोड़े और पशु पक्षी भी जीते हैं और मर जाते हैं।

इसलिये तुम्हें अपना शरीर स्वस्थ रखनेका प्रयत्न करना चाहिए। यदि तुम्हारा शरीर स्वस्थ है तो तुम धर्म, समाज और देशकी रक्षा कर सकते हो।

देखो, "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् शरीरसे ही धर्मका पालन होता है। उर्दूमें कहा है कि "एक तन्दुरुस्ती हजार न्यामत"। इसी प्रकार अंग्रेजीमें भी कहावत है जिसका अर्थ यह है 'स्वास्थ्य ही सम्पत्ति है'।

इसलिये तुम्हें अपना स्वास्थ्य अच्छा रखनेका सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये। इसके लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

१. भोजन खूब चबाकर खाओ। इतना खाओ कि जिससे पढ़नेमें आलस न आवे और तबियत बिगड़नेका डर न रहे।

२. दिनमें ही भोजन करो क्योंकि रातमे सूर्यका प्रकाश न मिलने के कारण अनेक सूक्ष्म विषैले जीव पैदा हो जाते हैं, जिससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

३. प्रतिदिन व्यायाम करो क्रिकेट, फुटबाल आदि और कुश्ती, कबड्डी आदिके सिवाय तैरनेका अभ्यास अवश्य करो तैरनेसे शरीरके प्रत्येक अङ्गमें बल पहुंचता है और पाचन-शक्ति बढ़ती है। इतना ही नहीं, समय पड़ने पर अपनी और दूसरे की रक्षा करनेका भी लाभ उठाया जा सकता है।

४. ऐसे कपड़े पहनो जो सदा स्वच्छ रह सकें। मैले कपड़े से स्वास्थ्य बिगड़नेका डर रहता है।

५. सदा ब्रह्मचर्यका पालन करनेका ध्यान रखो। किसी से बुरी हंसी मजाक न करो। नाटक, सिनेमा और अश्लील उपन्यासके पढ़ने वगैरहसे अपना मन दूर रखो।

वह काम करो, जो तुम्हारे साथी, पड़ोसमें रहने वाले, माता पिता और गुरु भी अच्छा समझें। ऐसे कामसे बहुत डरो जिसे तुम स्वयं बुरा समझते हो।

६. पानी हमेशा छानकर पिया करो क्योंकि उसमें छोटे छोटे कीड़े होते हैं, जो आंखोंसे नहीं दिखाई देते। गुजरात बङ्गाल और मारवाड़ में हिन्दू और मुसलमान भी तालावों में से छान कर पानी काममें लाते हैं। डाक्टर लोग भी अस्पतालोंमें दवाइयोंमें डालनेसे पहिले जलको छान लेते हैं।

७. जहांतक हो सके पानीको छानकर उबाल डालो और ठण्डा कर पियो।

प्रश्न

(१) स्वास्थ्य बननेके क्या नियम हैं ?

(२ स्वास्थ्यसे क्या २ लाभ हैं ?

(३) स्वास्थ्य और धर्मका क्या सम्बन्ध है ? पानी छानने की क्या विधि है ?

श्रीपरमात्मने नमः

सरल जैन धर्म

तीसरा भाग

पहला पाठ

(कविवर भूधरदास कृत)

वीर-हिमाचलतैं निकसी गुरु गौतमके मुखकुण्ड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान-पयोनिधि मांहि रली बहु भंग-तरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति मैं अंजुरी करि शीश धरी है॥

या जग-मन्दिरमें अनिवार अज्ञान-अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिनकी ध्वनि-दीपशिखा सम जो नहिं होत प्रकाशन हारी॥
तो किस भांति पदारथ-पांति कहां लहते, रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी॥२॥

जा वाणीके ज्ञानतैं, सूझे लोक अलोक।
सो वाणी मस्तक चढ़ौ, सदा देत हूं धोक॥३॥

शब्दार्थ—वीर-हिमाचल = महावीरस्वामीरूपी हिमालय पर्वत। गौतमगणधर = प्रधान । मोह-महाचल = मोहनीय कर्मरूपी महान पर्वत। जग = संसार। जड़ताप = मूर्खतारूपी गर्मी। ज्ञान-पयोनिधि = ज्ञानरूपी समुद्र। बहुभंग-तरङ्गनि = सप्त भंगी-रूपी लहरोंसे, शुचि पवित्र। शारद-गंगनदी सरस्वती रूपी गंगा नदी। शीश = मस्तक। पदारथ-पांति = जीव और अजीव आदि सात तत्व तथा पुण्य और पाप ये नौ पदार्थ हैं, इनका समूह। धोक = नमस्कार करना।

नोट—अध्यापक इसका सरल शब्दोंमें अर्थ समझा देवें। यह विनती शास्त्र बंचनेके बाद शान्त भावोंसे पढ़ना चाहिये।

प्रश्न

१. महावीर और शारद-गंगाका क्या सम्बन्ध है ?

२. ज्ञान-समुद्रका वर्णन करो।

३. शास्त्ररूपमें आनेसे पहिले सरस्वती का क्या रूप था ?

४. अगर भगवान्‌की दिव्यध्वनि न होती तो क्या दशा होती ?

५. जग-मन्दिरमें कैसे प्रकाश हुआ ?

दूसरा पाठ

दस प्राण

जिसके योगसे संसारी जीव जीवित रहें उसे प्राण कहते हैं। प्राणके मुख्य चार भेद हैं, इन्द्रिय, बल, आयु, और

श्वासोच्छ्वास। इनके ही भेद प्रभेद दस होते है।

स्पर्शन, रसना (जीभ), घ्राण (नाक), नेत्र और कर्ण (कान) ये पांच इन्द्रियां होती है। मन, वचन और काय ये तीन बल होते हैं। आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह ५+३+१+१=१० ये दस प्राण है।

नियत काल तक एक ही शरीरमें रोक रखनेको अर्थात् जीने और मरनेके बीचके समयको आयु कहते है। काम करने की शक्तिको बल कहते है। जिसके द्वारा जीव पहिचाना जावे उसे इन्द्रिय कहते है। वायुको शरीरमे लेना श्वास और वायुको बाहर निकालना उच्छ्वास कहा जाता है, इसलिये दोनों क्रियाओंको मिलाकर उसे श्वासोच्छ्वास कहते हैं। इन्हीं प्राणोंसे संसारी जीव पहिचाने जाते हैं।

किस जीवके कितने प्राण होते हैं, यह नीचे दिये हुए चार्ट (chart) से मालूम होगा :—

जीव		इन्द्रियां	बल	आयु	श्वासो०	संख्या
एकेन्द्रिय		स्पर्शन	काय	,,	,,	४
द्वीन्द्रिय		,, रसना	,, वचन	,,	,,	६
त्रीन्द्रिय		,, ,, घ्राण	,, ,,	,,	,,	७
चतुरिन्द्रिय		,, ,, ,, चक्षु	,, ,,	,,	,,	८
पंचेन्द्रिय	असैनी	,, ,, ,, ,, श्रोत्र	,, ,,	,,	,,	९
	सैनी	,, ,, ,, ,, ,,	,, ,, मन	,,	,,	१०

प्रश्न

१. प्राण किसे कहते है ?

२. प्राणके ४ और १० भेद कौनसे है ?

३. इन्द्रिय, आयु, बल और श्वासोच्छ्वासका क्या अर्थ है ?

४. द्वीन्द्रिय जीव और असैनी पंचेन्द्रिय जीवके कौन कौन प्राण हैं ?

५. बल और इन्द्रियां कितनी होती हैं ?

तीसरा पाठ

स्वाध्याय

(ले०—विद्याभषण सेठ रावजी सखारामजी दोशी)

एक दिन जिनेन्द्रभक्त मन्दिर गये, साथही उनका पुत्र विनयकुमार भी। वासुदेव शास्त्री शास्त्र बांचने बैठे थे दोनोंने शास्त्रको नमस्कार किया और शास्त्र सुनने लगे।

शास्त्रीजी शास्त्र बांचते हुये स्वाध्यायका स्वरूप समझा रहे थे कि स्वाध्यायका अर्थ शास्त्र बांचना या सुनना है। इसके पांच भेद होते है। वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्म्मोपदेश।

१. **वाचना**—शास्त्र बांचना या बांचकर सुनाना।

२. **पृच्छना**—शास्त्रमें कोई अर्थ समझमें न आनेपर पूंछना।

३. **अनुप्रेक्षा**—समझे हुए तत्वका बार २ विचारना।

४. **आम्नाय**—शास्त्रमे आये तत्वको ध्यानमे रखनेके लिये पाठ करना।

५. **धर्मोपदेश**—जो विषय समझते हों उसे दूसरोंको समझाना।

इस प्रकार स्वाध्यायके भेदोंका स्वरूप है। स्वाध्याय के समय शास्त्रको नमस्कार करना चाहिये। शास्त्रको चौकीपर रखना चाहिये। शास्त्रका वेष्टन अच्छी तरह बांधना चाहिये।

ऐसा शास्त्रीजी कह रहे थे कि विनयकुमारने पूछा शास्त्रीजी! हम समाचारपत्र और दूसरी पुस्तकें पढ़ते हैं, उसे भी स्वाध्याय कहना चाहिये क्या? शास्त्रीजीने उत्तर दिया कि उसे स्वाध्याय नहीं कहते क्योंकि उनको जैसे चाहे बैठकर या लेटे हुए भी बांच सकते है। इसमें विनय नहीं रहता। धर्मशास्त्रोंका स्वाध्याय विनयपूर्वक करना चाहिये। क्योंकि परम पूज्य आचार्योंने धर्म ग्रन्थोंको लिखा है और जो लिखा है, वह आदिनाथ स्वामी आदि तीर्थङ्करोंका उपदेश है। इसलिये शास्त्रका बहुत विनय करना चाहिये। समाचार-पत्र व पुस्तकें ऐसी नहीं है।

विनयकुमार—आपने ठीक बता दिया। अभी तक मुझे मालूम नहीं था। अब मैं प्रतिदिन स्वाध्याय किया करूंगा।

प्रश्न

१. स्वाध्याय किसे कहते हैं?

२. स्वाध्यायके कितने भेद होते हैं, उनके लक्षण बताओ।

३. समाचार-पत्रोंका बाँचना स्वाध्याय है क्या ?

चौथा पाठ

अजीव द्रव्य

पहिले बता दिया है कि जिसमे ज्ञान न हो, जानने देखने की शक्ति न हो उसे अजीव द्रव्य कहते हैं। इसके पाँच भेद होते हैं:—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पुद्गल—उसे कहते हैं जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाये जावें। ये चारों गुण प्रत्येक पुद्गलमें साथ २ रहते हैं। जैसे:—पके केलेका रूप पीला, रस (स्वाद) मीठा, गन्ध सुगन्ध (अच्छी) और स्पर्श कोमल होता है। इसी प्रकार प्रत्येक पुद्गलमें समझना चाहिये।

पुद्गलोंके गुण

स्पर्श—इन्द्रियोंके पाठमें बता दिया गया है कि स्पर्शन इन्द्रियका काम स्पर्श करना है अर्थात् छूना है। वह आठ प्रकारका होता है—हलका, भारी, ठण्डा, गर्म, रूखा, चिकना कोमल, और कठोर।

रस—रसना इन्द्रियसे, जाना जाता है। इसके खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा और कषायला ऐसे पांच भेद हैं।

गन्ध—घ्राण इन्द्रियसे मालूम होती है। यह सुगन्ध और दुर्गन्ध दो प्रकारकी होती है।

रूप (वर्ण)—चक्षु इन्द्रियका विषय है। यह भी पांच प्रकारका होता है काला, पीला, नीला, लाल, सफेद।

इस तरह ८+५+२+५=२० गुण पुद्गलमें पाये जाते है।

भेद

पुद्गलके मुख्य दो भेद हैं:—परमाणु और स्कन्ध।

परमाणु—पुद्गलके उस टुकड़ेको कहते है, जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके।

स्कन्ध—उसे कहते हैं जो दो या दो-से-अधिक परमाणुओं से मिला हो। इसके बहुत भेद होते हैं

इनमें ऊपरके बीसों गुण पाये जाते है।

धर्म्म—जो जीव और पुद्गलोंको चलनेमें सहायता दे, चलनेमें प्रेरणा न करे। जैसे—मछलीको पानी चलनेमे सहायता देता है, या सीढ़ियाँ मकानके ऊपर चढ़नेमें सहायता करती है लेकिन पानी मछलीको चलनेके लिये या सीढ़ियां मनुष्य को चढ़नेके लिये प्रेरणा नहीं करतीं।

अधर्म्म—जो जीव और पुद्गलोंको ठहरने या बैठनेमे सहायता दे, प्रेरणा न करे। जैसे—पथिक (मुसाफिर) को पेड़ की छाया। पेड़की छाया बुलाती और बैठाती नहीं है, मुसाफिर स्वयं बैठना चाहता है तो अधर्म्म द्रव्य सहायक हो जाता हैं।

धम्म और अधर्म्म से लोकमें प्रसिद्ध पुण्य और पाप नहीं समझना चाहिये।

आकाश—जो सब द्रव्योंको अवकाश (स्थान) दे। इसमें सब द्रव्य रह सकते हैं।

लोकाकाश और अलोकाकाश ये आकाशके दो भेद है।

लोकाकाश—में जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य पाये जाते हैं। इसे लोकाकाश कहते हैं।

अलोकाकाश—लोकाकाशके बाहर अनन्त आकाश है। इसे अलोकाकाश कहते हैं इसमें सिवाय आकाशके दूसरा द्रव्य नहीं रहता।

काल—जो द्रव्योंकी हालतें बदलता हो। जैसे कुम्हारके चाककी कील।

यह दो प्रकारका होता है, व्यवहार और निश्चय। सैकण्ड, मिनिट, घन्टा और दिन आदि व्यवहार काल है और कालाणु को निश्चयकाल कहते हैं।

ये कालाणु सारे लोकाकाशमें रत्नोंकी राशिके समान अलग २ स्थित है। ये एक दूसरेमें मिल नहीं सकते। यही कालाणुरूप निश्चय काल, व्यवहारकालमें कारण है।

पांच अस्तिकाय

जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म और आकाश ये पांच अस्तिकाय होते है क्योंकि ये है, इसलिये "अस्ति" और कायके समान

बहुत प्रदेशवाले हैं, इसलिये "काय" कहलाते हैं। इसलिये इन पांचोंको अस्तिकाय कहा है।

काल कायवान् नहीं है, इसके एक २ अणु अलग २ रहते हैं।

छह द्रव्य

जीव, पुद्गल, धर्म्म, अधर्म्म, आकाश और काल इन छह को द्रव्य कहा जाता है अर्थात् द्रव्य छह होते हैं।

प्रश्न

१. पुद्गल द्रव्य किसे कहते है और उसमें कौन २ गुण होते है ?

२. धर्म्मद्रव्य किसे कहते हैं, उदाहरण देकर बताओ ?

३. अधर्म्मद्रव्य किसे कहते हैं, उदाहरण देकर समझाओ ?

४. आकाशद्रव्य किसे कहते है और अलोकाकाशमे कौन २ द्रव्य हैं ?

५. कालद्रव्य किसे कहते हैं, उसके भेदोंका स्वरूप बताओ

६. अस्तिकाय किसे कहते हैं और वे कितने होते हैं ?

७. द्रव्य कितने और कौन २ से हैं ?

पांचवां पाठ

बारह भावनाएं

(कविवर भूधरदास कृत)

१. अनित्य

राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी २ बार ॥१॥

अर्थ—राजा, महाराजा चक्रवर्ती और हाथियोंपर सवारी करने वाले आदि सबको एक दिन अपनी २ वारी (मृत्यु समय आने) पर मरना है।

२. अशरण

दलबल देई देवता, मातपिता परिवार।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥२॥

अर्थ—सेना, देवी, देवता, माता, पिता या कुटुम्बके लोग, आदि कोई जीवको मरते समय रक्षा करने—बचानेवाला नहीं है

३. संसार

दाम बिना निरधन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥३॥

अर्थ—रुपया पैसाके बिना गरीब और आशाके कारण धनवान दुःखी हैं। संसारमें सुख कहीं नहीं है, सब संसार ढूँढ

कर देख लिया है।

४. एकत्व

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यों कबहूँ या जीवको, साथी सगा न कोय ॥४॥

अर्थ—यह जीव अकेला पैदा होता है और अकेला ही मरता है। इसलिये इस जीवका साथो या सम्बन्धी कोई नहीं है। यह एकत्वभावना× है।

५. अन्यत्व

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय ।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥

अर्थ—जब अपना शरीर ही अपना नहीं है तब अपना कोई नहीं हो सकता। घर और धन दौलत दूसरे है और कुटुम्बी लोग भी दूसरे हैं। यह स्पष्ट दीखता है

६. अशुचि

दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़-पिंजरा देह ।
भीतर या सम जगतमें, और नहीं घिनगेह ॥६॥

अर्थ—यह शरीर चमड़ेकी चादरसे ढका हुआ हड्डियोंका पींजरा है। इसलिये चमकता है। नहीं तो इस संसारमे इसके समान घृणाकी दूसरी जगह नहीं है।

× बार बार धर्मके स्वरूपका चिन्तवन करना भावना अथवा अनुप्रेक्षा कही जाती है।

७. आस्रव

मोह नींदके जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म-चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुधि नहीं ॥७॥

अर्थ—यह संसारी जीव सदा मोहरूपी निद्रामें आकर घूमता रहता है। उसे यह होश (खबर) ही नहीं है कि कर्मरूपी चोर चारों तरफ हैं और उसका सब धन लूट रहे हैं। अर्थात् मोहके कारण कर्मोंका आस्रव होता है और कर्मके कारण ही चारों गतियोंमें भटकता है।

८. संवर

सोरठा—सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं ॥
तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं ॥८॥

अर्थ—जब सच्चे गुरु इस संसारी जीवको उपदेश देकर जगाते हैं तब इसकी मोहरूपी निद्रा भंग होती है और तबही कोई उपाय बनता है, जिससे कर्मरूपी चोरोंका आना रुक जाता है अर्थात् सच्चे गुरु के उपदेशसे मोहका नाश होता है। इससे कर्मोंका आस्रव नहीं होता।

९. निर्जरा

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधैं भ्रम छोर।
या विध बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरव चोर ॥९॥

अर्थ—ज्ञानरूपी दीपकमें तपरूपी तेल भरो और निडर होकर घर संभालो। ऐसा किये बिना, घरमें पहिले बैठे हुये चोर घरसे नहीं निकलेंगे। अर्थात् ज्ञान और तपसे अज्ञान दूर होता

है और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इससे आत्मा निडर अथवा निर्मल बनता है।

कविने आत्माको घर और कर्मोंको चोर बताया है।

पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥

अर्थ—अहिंसा आदि पांच महाव्रतोंके धारण करने, ईर्या आदि पांच समितियोंके पालने और स्पर्शन आदि बलवान पांच इन्द्रियोंको जीतनेसे निर्जरा होती है, और यही सारभूत है इसे धारण करो।

१० लोक

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष-संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥११॥

अर्थ—लोकाकाश चौदह राजु ऊंचा है और यह मनुष्यके आकारका है। इसमें जीव अनादिकालसे बिना ज्ञानके भ्रमण कर रहा है।

११. धर्म

जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्तारैन।
बिन जांचे बिन चिंतये, धर्म सकल सुखदैन ॥१२॥

अर्थ—मांगने पर कल्पवृक्ष और चिन्तवन (विचार) करने से चिन्तामणि रत्न सुख देते हैं लेकिन बिना मांगे और बिना चिन्तवन किये, धर्म्म सबको सुख देता है। इसलिये धर्म्मका पालन करो।

१२. बोधिदुर्लभ

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ १२ ॥

अर्थ—संसारमें रुपया, अन्न, सोना और राज्यके सुख ये सब सरलतासे मिलजाते हैं लेकिन सच्चा ज्ञान ही प्राप्त करना कठिन है।

१अथि राशरण२ संसार३ है, एकत्व४ अनित्य५ हि जान।
अशुचि६ आस्रव७ संवरा८ निर्जर९ लोक१० बखान ॥
बोधि औ दुर्लभ,११ धर्म,१२ ये बारह भावन जान।
इनको भावे जो सदा, क्यों न लहै निर्वाण ॥
(बुधजन)

प्रश्न

१. बारह भावनाओंके नाम बताओ ?
२. लोकाकाशका आकार बताओ ?
३. हाड़-पींजरा, कर्मचोर, घर सोधे, चिन्ता रैन जथारथ का मतलब समझाओ ?
४. अनित्य, संवर और बोधिदुर्लभ भावना किसे कहते हैं ?
५. भावना का क्या अर्थ है ?

छठवां पाठ

सात व्यसन

व्यसन—मनुष्यकी उन बुरी आदतोंको कहते हैं जो उसके पतनका कारण होती हैं किन्तु फिरभी मनुष्य उन्हें छोड़नेमें अपनेको असमर्थ पाता है। ये व्यसन सात हैं:—

जूआ,१ चोरी,२ माँस,३ मद,४ वेश्या-रमण,५ शिकार,६।
पर-रमणी रत७ व्यसन ये सातों हैं दुखकार ॥

इनका स्वरूप बतलाते हैं:—

१. जुआ खेलना—हार या जीतके ख्यालसे पैसे ठहरा कर शर्त लगाना जुआ खेलना कहलाता है। ये जुआ खेलनेवाले जुआरी कहलाते हैं। लोग जुआरियोंका अनादर करते हैं। राजा इन्हें दण्ड देता है। जुर्माना कर उन्हें और भी दरिद्री बना देता है।

जुआ खेलना पाप है, होता है सन्ताप।
पाण्डव राजाने यहाँ, पाया दुःख-कलाप ॥

२. मांस खाना—जीवोंको मारकर या मरे हुये जीवोंके मांस खानेको मांस खाना कहते हैं। मांस खानेवाले हिंसक और निर्दयी होते हैं। संसारमे दूध, दही, घी, अन्न, फल और मिठाइयां खानेके लिये हैं। फिरभी लोग मांसको खाते हैं। यह बड़े अचम्भेकी बात है। मांसमें अनन्त जीव होते हैं। इसके काटने और पकानेमें घोर हिंसा होती है।

बक राजाने माँस खा छोड़ा राज्य महान।
दुर्गतिमें जाना पड़ा, यहां अधिक अपमान ॥

३. मदिरापान—गांजा, भांग, दारू, अफीम और चरस वगैरह मादक पदार्थोंका खाना मदिरापान कहलाता है। मदिरा पान करने वालोंका धर्म-कर्म सब नष्ट हो जाता है।

मदिरा पी मत्ता मलिन, लोटे बीच बजार।
मुखमें मूतै कूकरा, चाटै बिना विचार॥ (बुधजन)

मदिरामें अनन्त प्राणी सड़ कर पैदा होते हैं। इसमें घोर हिंसा है। हिंसासे पाप और पापसे दुःख होता है।

संन्यासी संन्यास तज, करता मदिरा-पान।
चण्डालोंके हाथसे, खो बैठा निज प्राण॥

४. शिकार खेलना—जंगलमें सिंह, बाघ और हरिण वगैरह स्वतन्त्र फिरनेवाले जीवों अथवा आकाशमें उड़नेवाले पक्षियों या किसी भी जीवको बन्दूक वगैरहसे मारना शिकार खेलना कहलाता है।

जैसे अपने प्रान हैं, तैसे परके जान।
कैसे हरते दुष्ट जन, बिना बैर पर-प्रान॥ (बुधजन)

जो लोग अपनी जानके समान दूसरोंकी जान नहीं समझते वे महान पापी हैं।

भैंरवने मारा हिरण, शूकर पर शर तान।
बाल बाल सूकर बचा, ली भैंरवकी जान॥

५. वेश्या गमन—वेश्यासे रमण करनेकी इच्छा करना, उसके घर जाना या उससे सम्बन्ध रखना वेश्यागमन कहलाता है।

द्विज खत्री कोली बनिक, गनिका चाखत लाल।
ताकौं सेवत मूढजन, मानत जनम-निहाल॥ (बुधजन)

वेश्या प्रत्येककी लार चाटती रहती है, उसे चाटकर मूर्ख

अपनेको धन्य समझते है, खेद है। वेश्यायें तो केवल पैसेसे प्रेम करती हैं। पैसा न रहने पर वे पास नहीं फटकतीं।

चारुदत्तकी चतुरता, सेनाने* की नष्ट।
सारा पैसा हड़पकर, दिये बहुतसे कष्ट॥

६. चोरी—किसीकी गिरी, भूली, अथवा रखी हुई चीजको ले लेना या लेकर दूसरोंको दे देना चोरी कहलाती है। जिसकी चोरी होती है उसका मन बहुत दुःखी होता है। धन प्राणोंसे भी प्यारा होता है, इसलिये धन हरने वालेको प्राण हरनेका पाप लगता है।

बहु उद्यम धन मिलनका, निज-परका हितकार।
सो तजि क्यों चोरी करै, तामें विघन अपार॥

चोरको लोग बुरी दृष्टिसे देखते हैं। चोरीका धन पासमें नहीं रहता। इससे बढ़कर कोई पाप नहीं है।

ढोंगी साधु बना हुआ, परधन हरन प्रवीन।
राज दण्डको भोगकर, पाई दुर्गति दीन॥

७. परस्त्रीसेवन—धर्मानुकूल अपनी विवाहित स्त्रीके सिवाय दूसरी स्त्रियोंके साथ विषयसेवन करना, परस्त्रीसेवन कहलाता है। विवाहित स्त्रीके सिवाय सब लड़की, बहिन और माताके समान है। इसलिए परस्त्री-सेवन करनेवालेको लड़की, बहिन और माताके साथ विषय-सेवन करनेका पाप लगता है। इससे लोकनिन्दा होती है इसे दिन-रात बिल्लीकी तरह घात लगाई रहनी पड़ती है।

---

*बसन्ततिलका वेश्याकी लड़की "बसन्तसेना"।

ना सेई नाही छुई, रावन पाई घात।
चली जात निन्दा अजौं, जगमें भई विख्यात ॥ (बुधजन)

इसलिये बालको! ये व्यसन बड़े दुखदाई हैं। व्यसनका मतलबही दुःखदाई है। इनसे सदा डरते रहो।

प्रथम पाण्डवा भूप, खेलि जुआ सब खोयो।
मांस खाय बकराय, पाय विपदा बहु रोयो॥
बिन जानें मदपान, योग यादौगन दज्झै।
चारुदत्त दुख सह्यो वेसवा-विसन अरुज्झै॥
नृप ब्रह्मदत्त आखेटसों, द्विज शिवभूति अदत्तरति।
पर- रमनि राचि रावन गयो, सातौं सेवत कौन गति ?॥

प्रश्न

१. व्यसन किसे कहते हैं ?
२. व्यसन कितने होते हैं, नाम बताओ।
३. व्यसनोंके लक्षण बताओ।
४. व्यसनोंमें प्रसिद्ध होने वालोंकी कहानियाँ सुनाओ।
५. व्यसन सेवन करने वालोंको कौन-कौन पापका बन्ध होता है और क्यों ? समझाओ।

सातवां पाठ

कषाय और लेश्या

कषाय—जो आत्माके शुभ भावोंको कषे अर्थात् घाते उसे कषाय कहते हैं। वे चार होती हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। क्रोध—गुस्सा करना, मान—धन, शरीर, ज्ञान, कुल,

जाति, पूजा, ऋद्धि और तपका घमंड करना, माया—छल-कपट करना, लोभ लालच करना।

लेश्या—इन चारों कषायोंके उदयसे रंगे हुये मन, वचन और कायकी प्रवृत्ति अर्थात् क्रियाको लेश्या कहते हैं। यह भावलेश्या है और शरीरके रंगको द्रव्यलेश्या कहते है।

लेश्याके छह भेद है—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

इनका उदाहरण देकर बताते हैं:—

एक दिन छह लकड़हारे जंगलमें लकड़ी लेने गये थे। उनमें सबके भाव अलग-अलग थे। एक पके आमके पेड़को देखकर उनके इस प्रकार भाव हुये—

कृष्णलेश्यावालेने कहाकि 'यदि हम लोग पेड़को जड़से काट डालें तो आम खानेको मिलेंगे''।

नीललेश्यावालेने कहा कि ''यदि बड़ी डाली काटी जावे तो ठीक होगा''।

कपोतलेश्यावालेने 'छोटी डाली काटना ठीक समझा''। पीतलेश्यावालेने कहा कि ''केवल सब फलतोड़लिये जावें''। पद्मलेश्यावालेने विचारा कि ''यदि पके फल ही तोड़े जावें तो ठीक है''। और शुक्ललेश्यावालेने कहा कि ''पृथ्वीपर पड़े हुये पके फल लेलेना चाहिए''। इसप्रकार छह लकड़हारोंके छह प्रकारसे परिणाम (भाव) हुए।

व्यवहारमें किस लेश्यावालेकी क्या पहिचान है इसका वर्णन करते हैं।

कृष्णलेश्यावाला बड़ा क्रोधी, वैर रखनेवाला, गाली बकने वाला, धर्म और दयासे रहित और वह किसीके वशमें नहीं रहता। ऐसा तीव्र क्रोध, मान, माया और लोभ करनेवाला कृष्णलेश्यावाला है।

जो मन्द-बुद्धिवाला, अज्ञानी, मानी, माया करनेवाला कपटी, आलसी, निद्रालु, और परिग्रही हो उसे नीललेश्यावाला समझना चाहिए।

रूठना, निन्दा करना, दोष लगाना, शोक करने वाला, डरने वाला चुगली करने वाला दूसरेकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करनेवाला दूसरेका विश्वास न करने वाला—अपने समान दूसरेको अविश्वासी समझनेवाला लाभ-हानि न समझनेवाला और दूसरेका यश न समझनेवाला कपोतलेश्यावाला समझना चाहिए।

हित अहित जाननेवाला, सबको अपने समान समझने-वाला, दान करनेवाला, दयावान और कोमल परिणामवाला नम्र पुरुष पीतलेश्यावाला समझना चाहिए।

त्यागी, सरल-परिणामी, उत्तम पात्रोंको दान करनेवाला, क्षमा करनेवाला, साधुओं और गुरुओंकी पूजा करनेवाला, पद्मलेश्यावाला जानना चाहिए।

पक्षपात न करनेवाला, सबको समान समझने वाला, संसारके सुखोंकी इच्छा न रखनेवाला, और राग द्वेष न करनेवाला पवित्रात्मा शुक्ललेश्यावाला है।

कृष्ण[1] वृक्ष काटन चहै, नील[2] जु काटन डाल।
लघु डाली कापोत[3] अरु, पोत[4] सर्व फल माल॥
पद्म[5] चहै फल पक्वको, तोड़ खाऊं सार।
शुक्ल[6] चहै धरती गिरे, लूं पक्के निरधार॥

प्रश्न

१. कषाय किसे कहते हैं और वे कितनी होती हैं?
२. लेश्या किसे कहते हैं? उसके मुख्य भेद कितने हैं?
३. छहों लेश्याओंका संक्षेपमें लक्षण कहो।
४. सबसे अच्छी और सबसे बुरी लेश्या कौनसी है?
५. किसके कौनसी लेश्या है? दो उदाहरण दो।

आठवां पाठ

देवस्तवन*

(अनुवादक पं० नाथूरामजी प्रेमी)

शक्र ÷ सरीखे शक्तिवाननें, तजा गर्व गुण गानेका।
किन्तु न मैं साहस छोड़ूंगा, विरदावली + बनानेका॥
अपने अल्पज्ञानसे ही मैं, बहुत विषय प्रकटाऊंगा।
इस छोटे वातायन × से ही सारा, नगर दिखाऊंगा॥१॥
तुम सर्व-दर्शी देव, किन्तु तुमको न देख सकता कोई।

---

*धनञ्जयकविकृत विषापहारस्तोत्रके पद्योंका अनुवाद।
÷ इन्द्र। + स्तोत्र। × खिड़की।

तुम सबके हो ज्ञाता, पर तुमको न जान पाता कोई ॥
'कितने हो ?' 'कैसे हो' यों कुछ कहा न जाता हे भगवान।
इससे निज अशक्ति बतलाना, यही तुम्हारा स्तवन महान ॥

बालक सम अपने दोषोंसे जो जन पीड़ित रहते हैं।
उन सबको हे नाथ ! आप भवताप-रहित नित करते है ॥
यों अपने हित और अहितका, जो न ध्यान धरनेवाले।
उन सबको तुम बाल-वैद्य हो, स्वास्थ्य-दान करनेवाले ॥ ३ ॥

भक्तिभावसे सुमुख आपके रहने वाले सुख पाते।
और विमुखजन दुख पाते हैं, रागद्वेष नहिं तुम लाते ॥
अमल सुदुतिमय- चारु-आरसी,+सदा एकसी रहती ज्यों।
उसमें सुमुख विमुख दोनोंही देखें छाया ज्यों-की-त्यों ॥ ४ ॥

प्रभुकी सेवा करके सुरपति, ÷बीज स्वसुखके बोता है।
हे अगम्य ! अज्ञेय ! न इससे, तुम्हें लाभ कुछ होता है ॥
जैसे छत्र सूर्यके सम्मुख, करनेसे दयालु जिनदेव।
करनेवाले हो को होता, सुखकर आतपहर स्वयमेव ॥ ५ ॥

धनिकोंको तो सभी निधन लखते है, भला समझते है।
पर निधनोंको तुम सिवाय जिन, कोई भला न कहते है ॥
जैसे अन्धकारवासी उजियालेवालेको देखे।
वैसे उजियालावाला नर, नहिं तमवासीको देखे ॥६॥

बिन जाने भी तुम्हे नमन करनेसे जो फल फलता है।
वह औरोंको देव मान, नमनेसे भी नहिं मिलता है ॥७॥

जो इस जगके पार गये, पर पाया न जाय जिनका पार।
ऐसे जिनपतिके चरणोंकी, लेता हूँ मैं शरण उदार ॥८॥

+कान्तिमान् सुन्दर दर्पण। ÷इन्द्र।

प्रश्न

१. भगवानके गुणोंका वर्णन करो ?

२. निर्मलदर्पणका उदाहरण देनेका क्या अर्थ है ?

३. भगवान तरन-तारन क्यों है ?

नववां पाठ

पांच मंगल

बालको ! तुम्हें मालूम है जिन-मन्दिरोंमें तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें विराजमान रहती हैं । उनका पूजन प्रतिदिन करना चाहिए । पूजनसे पहिले श्रीभगवान्‌का अभिषेक होता है । यह क्यों ?

बात यह है कि आजकल तीर्थंकरोंके न होनेके कारण उनकी मूर्तियोंके द्वारा उनकी पूजा ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसी उनकी की गई थी । इसलिये उनके आकारकी प्रतिमायें बनवाकर और उनकी शास्त्रानुसार प्रतिष्ठा कराई जाती है । उस समय बड़ाभारी उत्सव मनाया जाता है । इसे ही कल्याणक कहते हैं । उसी कल्याणकका यहभी एक छोटा रूप है । इसके पाँच अङ्ग है—गर्भ, जन्म, तप (दीक्षा), ज्ञान और निर्वाण ।

इनका नीचे संक्षेपसे वर्णन करते है :—

१. गर्भ—श्रीभगवानके गर्भमें आनेके छह महीना पहिले ही स्वर्गसे इन्द्र, कुबेरको भेजता है । कुबेर आकर सुन्दर नगर बनाता है । उसमें अतिशय सुन्दर और रत्नमयी मन्दिर वन और उपवन बनाता है उसी समयसे भगवानके माता-पिताके घरपर

रत्नोंकी वर्षा, फूलोंकी वर्षा, गंधोदककी वर्षा दुंदुभिबाजोंका बजना और जय-जयकारका शब्द होने लगता है। इन्हें पञ्च-आश्चर्य कहते है। इसी प्रकार छह महीने तक पञ्चआश्चर्य होते रहते हैं और देवियाँ आकर माताकी सेवा करती रहती हैं एक दिन माताको रातके पिछले पहरमें सोलह स्वप्न आते हैं। उनका फल स्वामी (पति) से यह जानकर कि तीन लोकका स्वामी तीर्थङ्कर पुत्र होगा' बड़ी प्रसन्नता होती है।

२, जन्म—भगवानका जन्म होते ही साथमे उनको मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते है। जन्मके समय तीनों लोकमें आनन्द होता है। इन्द्रका आसन कंपित हो जाता है और उसे अवधिज्ञानसे भगवानके जन्मका पता लग जाता है। तब इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठकर कुटुम्ब सहित आता है और जय-जयकारका शब्द करता हुआ नगरकी तीन प्रदक्षिणा करता है। इन्द्राणी प्रसूतिगृहमे जाकर भगवानकी माताको मायामयी निद्रामे सुला देती है और मायामयी बालक सुला कर भगवानको ले आती है। सौधर्म इन्द्र भगवानको प्रणाम कर गोदमें लेता है, ईशान इन्द्र छत्र लगाता है सनत्कुमार और महेन्द्र दोनों ओर चमर ढोरते हैं और सब इन्द्र जय-जय शब्द बोलते हैं। इस प्रकार चारों प्रकारके देव बहुत प्रसन्न होकर भगवानको ऐरावत हाथीपर विराजमान कर मेरु पर्वतपर लेजाते है। वहाँ पांडुकशिलापर रत्नमयी सिंहासनपर विराजमान करते हैं। उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजते है। इन्द्राणी मङ्गल गीत गाती हैं, देवांगनाएं नृत्य करती हैं देव क्षीरसमुद्रसे कलश भर-भर लाते हैं और सौधर्म तथा ईशानइन्द्र भगवानका अभिषेक करते हैं। बादमें भगवानको वस्त्राभूषण पहनाकर

उत्सव मनाते हुये वापिस होते हैं। इन्द्र भगवान्को माताकी गोद में देकर कुबेरको उनकी सेवाके लिये छोड़कर अपने स्थानपर चला जाता है।

३. तप—बादमें भगवान् बाललीला करते हैं। देव भी भगवान जैसा रूप धारण कर उनके साथ खेलते हैं। भगवान् को पसीना नहीं आता, उनके शरीरमें किसी प्रकारका मल नहीं होता, उनका खून सफेद होता है, शरीर सुगन्धित और अनेक शुभलक्षणोंसे युक्त होता है। इस प्रकार सुख भोगकर भगवान को संसारकी दशासे वैराग्य पैदा हो जाता है। उस समय संसारके स्वरूपका चिन्तवन करते हैं, बारह भावनायें भाते हैं। तब लौकान्तिक देव आकर भगवान् के वैराग्य की प्रशंसा करते हैं। फिर इन्द्र आकर रत्नमयी पालकीमें भगवानको विराजमान कर नन्दनवनमें ले जाता है। वहां भगवान् वस्त्राभूषणोंका त्याग कर पंच महाव्रत धारण करते हैं, केश लोंच करते हैं। इन्द्र केशलोंचके बालोंको रत्नमयी पिटारमें रखकर क्षीर समुद्रमें सिरा आता है और स्वर्ग चला जाता है।

भगवान्को तपके प्रभावसे आठ ऋद्धियां प्राप्त होती है और केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है।

४. ज्ञान—भगवानको केवलज्ञान होते ही कुबेर समवशरणकी रचना करता है। उसमें बारह सभायें होती हैं। जीव उनमें बैठकर भगवान का उपदेश सुनते हैं। भगवान गन्धकुटीमें विराजते हैं। कुबेर रत्नमयी सिंहासनपर सोनेका कमल बनाता है। उससे चार अंगुल ऊपर—अधर (आकाशमें) रहते हैं। देव चमर ढोरते है। कल्पवृक्षोंके फूलोंकी भगवान पर वर्षा होती है

देव दुन्दुभि बाजा बजाते हैं, उससे आकाश गूंजता है। भगवानके शरीरका तेज सूर्यमण्डलके तेजसे अधिक रहता है। केवलज्ञानके समय भगवान्‌की विभूति अनुपम होती है। भगवानके प्रभावसे सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं होता। परस्पर वैर रखनेवाले जीव एक दूसरेको कोई कष्ट नहीं देते। भगवान् पर कोई उपसर्ग नहीं होता। आंखोंकी पलकें नहीं झपकतीं। नख और केश नहीं बढ़ते, स्फटिकमणिके समान उनका शरीर निर्मल होता है।

भगवानका उपदेश अर्धमागधी भाषामें होता है। उसे सब प्राणी अपनी २ भाषामें समझ लेते हैं। परस्परमे विरोध रखने वाले मृग सिंह, सर्प नकुल (नेवला) आदि वैर छोड़कर प्रेमसे व्यवहार करते हैं। भगवानकी विहार-भूमिमे सब ऋतुओंके फल फूल फलते हैं। काँचके समान पृथ्वी निर्मल हो जाती है। पवनकुमार देव एक २ योजनकी भूमि साफ करते रहते हैं। स्वर्गके देव भगवानके चरणोंके नीचे कमलकी रचना करते जाते है। सब दिशायें निर्मल हो जाती हैं। देवता भगवानके जय-जय कारके शब्दोंका उच्चारण करते जाते हैं। भगवानके आगे धर्मचक्र रहता है। केवलज्ञान होने पर देवोंके द्वारा किये गये ये चौदह अतिशय होते है। भगवान, जन्म, मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित होते हैं और नौ केवल लब्धियोंको धारण करते हैं।

५. निर्वाण—केवलज्ञानद्वारा पदार्थोंके स्वरूपको जिस प्रकार जानते हैं उसी प्रकारका उपदेश करते हैं। भगवानके उपदेशसे सर्वजीव रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गमें लीन हो जाते है। पश्चात् शुक्लध्यानपूर्वक संयोग केवलीसे अयोगकेवली

होकर और चौदहवें गुणस्थानकी प्रकृतियोंका नाश कर अविनाशीपद प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान लोकके अग्रभागमें स्थित रहते हैं क्योंकि उसके आगे धर्म द्रव्य नहीं है। उनका आकार अन्तिम शरीरसे कुछ कम रहता है। भगवानमें ज्ञानावरणादि कर्मोंके अभावसे ज्ञान आदि आठ गुण व्यवहार नयसे और निश्चयनयसे अनन्तगुण विद्यमान रहते हैं। यहां आत्माका शुद्धस्वरूप प्रकट हो जाता है। यही सुखकी अन्तिम सीमा है।

भगवानके निर्वाणके पीछे शरीरके परमाणु खिर जाते हैं, नख और केश रह जाते हैं। देव भगवानका मायामयी शरीर बना कर सुगंधित चन्दनकी चितापर रखते हैं और अग्निकुमार देवोंके मुकुटसे अग्नि प्रकट होती है उससे अग्नि-संस्कार होता है।

इसप्रकार भगवानके निर्वाण कल्याणककी महिमाका वर्णन कर भव्य सुखसम्पत्ति प्राप्त करते हैं।

प्रश्न

१. कल्याणक किसे कहते हैं और वे कितने होते है ?

२. प्रत्येक कल्याणकका भावार्थ बतलाओ ?

३. भगवानके कल्याणकोंके जो अतिशय—विशेषताएं होती हैं उनका वर्णन करो।

४. भगवानके समवशरणमें कौन कौन आते हैं और उनका उपदेश किस भाषामें होता है ?

५. निर्वाणके बाद अग्निसंस्कार कैसे किया जाता है ?

दसवाँ पाठ

दर्शनस्तुति

[कविवर भूधरदासकृत]

पुलकंत१ नयन-चकोर-पच्छी, हँसत उर२-इन्दीवरो।
दुर्बुद्धि-चकवी विलख बिछुड़ी निबिड़ मिथ्या-तम हरो॥
आनन्द अम्बुधि३ उमगि उछर्यो अखिल आतप४ निरदले।
जिनवदन५पूरनचन्द्र निरखत सकल मन वांछित फले॥१॥

मम आज आतम भयो पावन६ आज विघन विनाशिया।
संसार-सागर-नीर निबर्यो७, अखिल तत्व प्रकाशिया॥
अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये।
दुख जर्यो दुर्गतिवास निवर्यो, आज नवमंगल भये॥२॥

मन-हरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये?
मम सकल तनके रोम हुलसे, हर्ष और न पाइये॥
कल्याण-कार प्रतच्छ प्रभुको, लखैं जे सुर नर घने।
तिह समयकी आनन्द महिमा, कहत क्यों मुखसे बने॥३॥

भर नयन निरखे नाथ तुमको, और वांछा ना रही।
मम सब मनोरथ भये पूरन, रङ्क मानों निधि लही॥
अब होउ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिए।
कर जोर "भूधरदास" बिनवै, यही वर मोहि दीजिये॥४॥

---

१ प्रसन्न, २ हृदयरूपी कमल। ३ आनन्दरूपी सागर। ४ नष्टहुए। ५ जिनेन्द्रभगवानका मुखरूपी पूर्ण-चन्द्रमा। ६ पवित्र। ७ अन्त होना।

प्रश्न

१. भगवानके दर्शनसे क्या लाभ होता है ?
२ भगवानकी भक्तिसे तुम क्या चाहते हो ?
३. स्तुतिका सार समझाओ।

ग्यारहवां पाठ

रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान- और सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न हैं। ये ही रत्नत्रय कहलाते हैं। ये आत्माके गुण हैं।

इसके दो भेद हैं— निश्चय और व्यवहार।

आत्माके स्वरूपका श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। आत्माके स्वरूपका निश्चय होना सम्यग्ज्ञान और आत्माके स्वरूपमें लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

सच्चा देव, सच्चा शास्त्र, सच्चा गुरु और दयामयी धर्म का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित सच्चादेव होता है। अरहन्तदेवके द्वारा दिये गये उपदेशोंको याद रखकर गणधर देव द्वादशांगकी रचना करते हैं और उन्हींके आधार पर आचार्य अन्य शास्त्रोंकी रचना करते हैं वे सब सच्चा शास्त्र है।

जो संसारके विषयकषायोंसे दूर रहे और ज्ञानध्यानमें लीन रहे उसे गुरु कहते हैं।

अरहन्त देवका कहा हुआ और आत्माका कल्याण करने वाला अहिंसा स्वरूप धर्म्म है।

सम्यग्दर्शनके समान संसारमें कोई सम्पत्ति नहीं है। इसे सब कोई धारण कर सकता है। चांडाल भी सम्यग्दर्शन धारण कर पूज्य बन जाते है। इससे कुत्ताभी देव हो जाता है। आत्मा के कल्याणके लिये सम्यग्दर्शन होना बहुत आवश्यक है। जैसे बीजके न होने पर अंकुर होना, बढ़ना और फल लगना नहीं होता वैसे ही सम्यग्दर्शन न होने पर ज्ञान और चारित्र भी नहीं होते। इसलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है। सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेने वाले, नरकगति और तिर्यञ्चगति में नहीं जाते, नपुंसक नहीं होते, छोटे कुलोंमें पैदा नहीं होते, लूले लंगड़े नहीं होते, कम आयुके नहीं होते और उन्हें दरिद्रता नहीं सताती। उनको संसार पूजा करता है।

व्यवहार सम्यग्ज्ञान

जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही जानना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है।

जबतक सम्यग्दर्शन नहीं होता तबतक ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। सम्यग्ज्ञानमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये तीनों ही दोष नहीं होते।

यह सम्यग्ज्ञान सच्चे शास्त्रोंके पढ़ने, सच्चे गुरुओंका उपदेश सुनने और वस्तुके स्वरूपका बार-बार विचार करनेसे होता है जो ज्ञानी होते हैं वे संसारसे सदा उदासीन रहते हैं और वेही कर्मके बन्धन तोड़कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

व्यवहारसम्यक्चारित्र

हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों तथा अन्य संसारके कारणरूप विषय-कषायोंका त्याग करना व्यवहार सम्यक्चारित्र है।

संसारसे मोह दूर करने पर सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। ऐसी अवस्थामें रागद्वेष आदि विकारोंको नष्ट करनेके लिये आचरण करना ही सम्यक्चारित्र कहलाता है।

मोक्षमार्ग

ये तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग है। जैसे कोई बीमार दवाई पर भरोसा न करे, दवाई न पहचाने या दवाई विधिके अनुसार नहीं खावे तो उसे आराम नहीं मिलता, तीनों करने पर ही आराम मिलता है वैसे ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंका धारण करना ही आत्माके कल्याणका अर्थात् मोक्षका कारण है।

जैसे—जंगलमें आग लगने पर केवल अन्धा, लँगड़ा, या आलसी ये तीनों अपनी रक्षा नहीं कर सकते वैसे ही केवल दर्शन, ज्ञान और चारित्रसे आत्माका कल्याण नहीं हो सकता। इसलिये मोक्ष अर्थात् सच्चा सुख पानेके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंका होना बहुत आवश्यक है।

प्रश्न

१. रत्नत्रय किसे कहते हैं ?

२. रत्नत्रयके कितने भेद हैं ?

३. सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

४. सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

५. सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

६. मोक्षमार्ग क्या है ?

७. रत्नत्रय मोक्षमार्ग है, उदाहरण देकर समझाओ ।

बारहवां पाठ

जलमें जीव

वर्तमान वैज्ञानिकोंकी सम्मति है कि जल छानकर ही पीना चाहिए और शास्त्रकारोंका कथन है कि "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् अहिंसा ही उत्कृष्ट धर्म्म है ।

इसलिये हमारे जीवनका मुख्य ध्येय धर्म्मका पालन करना ही होना चाहिए ।

यों तो संसारमें ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां जीव नहीं हो ? फिर भी हमें सावधानीसे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

हम जितने संयमसे चलेंगे उतना ही हमारा लाभ होगा ।

बालको ? पानीकी एक बूंदमें कितने जीव होते हैं ? यह एक छपे चित्रमें स्पष्ट दिखाई देता है । देखते ही कितना भय पैदा होता है ?

हुआ और खेदखिन्न भो। भवितव्यता अलंघ्यशक्ति है। अकलङ्कके हृदयमें अब जैन धर्मके छिपे हुये सूर्यको प्रगटित करनेकी तीव्र भावना एवं लगन पैदा हुई। दोनों भाइयोंने जैन-धर्मका विशेष अध्ययन करनेका इरादा किया। अकलङ्क तीव्र-बुद्धि थे। उन्हें एकबार सुननेसे ही याद हो जाता था और निकलङ्कको दो बार सुननेसे याद होता था। उस समय बौद्धों का जमाना था। सर्वत्र उन्हींकी तूती बजती थी। बौद्ध पाठ-शालाओंमें दूसरों पर कड़ी निगाह रखी जाती थी। इसलिये उस समय बौद्धेतर वेषमें रहकर बौद्ध सिद्धान्तोंका अध्ययन करना कठिन था। अकलङ्कने वेष बदल कर बौद्ध सिद्धान्तोंका अध्ययन किया।

एक दिनकी बात है कि छात्रोंको पढ़ाते समय बौद्ध-पाठक जैनधर्म सम्बन्धी प्रकरण नहीं समझा सके। वे उठकर कहीं चले गये। इतनेमें अकलङ्कने उस प्रकरणको शुद्ध कर दिया। जब बौद्ध पाठकने लौटकर प्रकरणको शुद्ध पाया तो उन्हें सन्देह हो गया कि यहां अवश्य कोई जैनी प्रच्छन्न (छिपे) वेषमें रहकर बौद्धसिद्धान्तोंको पढ़रहा है और वह भविष्यमें बौद्ध सिद्धान्तोंका विरोधी होगा। शीघ्रही छान-बीन करना शुरू करदी। प्रथम ही इसकी परीक्षाके लिये एक जैन निर्ग्रन्थ प्रतिमा मगाई गई। और बारी २ से सब छात्रोंसे नकवाई गई। जब अकलङ्क और निकलङ्कका अवसर (बारी) आया तब वे प्रतिमाको सूतके आच्छन (ढाक) करके सग्रन्थ मानकर उसे नाक गये। इस परीक्षामें बौद्ध गुरु असफल रहे। उन्हें जैनका पता नहीं चल पाया। फिर दूसरी परीक्षा ली गयी। एक बोरेमें

कांसेके बर्तन भरकर अर्धरात्रिमें छतपरसे पटकवाये। उसकी आवाजसे सभी छात्र डर गये और बुद्ध-बुद्ध नाम जपने लगे। किन्तु अकलङ्क और निकलङ्कने अरहन्त सिद्धका नाम जपा। उसे सुनकर बौद्धगुरुने इन दोनों भाइयों को जैनी जानकर पकड़वाकर कारागृहमें भिजवा दिया। दैवयोगसे रात्रिके पहरेदार के सो जाने और जेलका द्वार खुला मिलनेसे वे दोनों भाई कारागृहसे निकल गये। सुबह मालूम पड़ा कि अकलङ्क और निकलङ्क कारागृहसे निकलकर भाग गये हैं। राजाने उन्हें पकड़ ले आनेके लिये शीघ्र ही घुड़सवार भेजे। अकलङ्क और निकलङ्कने अपने पीछे घुड़सवारोंको आते देखकर विचार किया कि अब प्राण बचना अत्यन्त कठिन है। अकलङ्कने छोटे भाई निकलङ्कसे कहा भाई! तुम इस समीपके तालावमें कमलके पत्तोंमें छिप जाओ। अगर तुम्हारी जान बच जायगी तो तुम जैनधर्मका उद्धार कर सकोगे। अकलङ्कके इन वचनोंको सुनकर वीर निकलङ्क बोलाकि, पूज्य अग्रज! आप विशेष प्रतिभाशाली हैं। आपको कोई बात एकबार सुनलेनेसे याद हो जाती है। अतः आप जैनधर्मका विशेष प्रचार कर सकते हैं। इसलिये मेरे जीवनकी अपेक्षा आपका जीवन लोकहितकी दृष्टिसे अधिक महत्वका है। अतः आपही इन कमलके पत्तोंमें छिप जावें। दोनोंके छिपनेसे बचनेमें सन्देह है। दीर्घदर्शी अकलङ्क कमलके पत्तोंमें जा छिपा। निकलङ्कको भागता हुआ देखकर तालाबके घाटपर कपड़े धोनेवाले धोबीने पूछा कि भाई क्यों भागते जा रहे हो? निकलङ्कने कहा कि शत्रुको सेना आ रही है। इस बातको सुनकर धोबी भी भयके मारे निकलङ्क के साथ हो लिया। इतनेमे ही शत्रुसेनाने आकर दोनोंको पकड़

मार गिराया। बौद्ध राजा तथा बौद्धगुरुओंको अपने कंटकके अन्त हो जानेका समाचार मिला। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

कुछ समयके उपरान्त अकलंक कमलके पत्तोंमेंसे निकलकर दैगम्बरी दीक्षा ग्रहणकर समस्त भूतलपर डंकेकी चोट जैनधर्मका प्रचार करने लगे। उन्हें अनेकप्रकार बौद्धोंके आक्रमण सहने पड़े और अकलंकने इन आक्रमणोंकी परवा न कर भूमण्डलके अनेक बौद्धविद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ कर और उन्हें शास्त्रार्थमें पराजित कर समस्त संसारमें जैनधर्मका डंका बजाया। उन्होंने अपनी प्रतिभाके द्वारा जैनदर्शनके कठिन-से-कठिन तत्वोंका अच्छा प्रचार किया। कहा जाता है कि एकबार तो अकलंकने बौद्ध विद्वानोंद्वारा उपासित घड़ेमें बैठी तारादेवीके साथ छह मास तक शास्त्रार्थ किया था। अन्तमें इस शास्त्रार्थकी विजयका श्रेय अकलंकको ही मिला था। इसप्रकार हमारे चरितनायक आचार्य पदवी धारी भट्टाकलंकदेवने जैनधर्मकी महान सेवा की है और हमें जैनदर्शनको समझनेके लिये अपनी अमूल्य ग्रन्थ-कृतियां प्रदान की हैं। इसलिये हम सब उनके अतीव कृतज्ञ हैं।

प्रश्न

१. अकलंकस्वामीके जीवनसे क्या शिक्षा मिलती है ?
२. स्वामीने जैनधर्मकी प्रभावना कैसे की ?
३. स्वामीका जीवनचरित सुनाओ ?

श्रीपरमात्मने नमः

सरल जैन धर्म

चौथा भाग

पहला पाठ

मेरी भावना

जिसने रागद्वेषकामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवोंको मोक्ष-मार्गका, निःस्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभावसे प्रेरित हो यह, चित्त उसीमें लीन रहो ॥१॥
विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्यभाव—धन रखते हैं।
निज परके हित साधनमें जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ-त्यागकी कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके, दुख-समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्यामें यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊं किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूं।
पर-धन वनिता पर न लुभाऊं, सतोषामृत पिया करूं ॥३॥
अहङ्कारका भाव न रक्खूं, नहीं किसीपर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़तीको, कभी न ईर्ष्या भाव करूं ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ॥४॥
मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उरसे करुणा-स्रोत बहे ॥
दुर्जन, क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझ को आवे।

साम्यभाव रक्खूं मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥
गुणीजनों को देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषोंपर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहे या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आजावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥७॥
होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे।
पर्वत, नदी श्मशान भयानक, अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल अकंप निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर पाप अभिमान छोड़ कर नित्य नये मङ्गल गावे ॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्म फल सब पावें ॥९॥
ईति-भीति व्यापे नहीं जगमें वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगतमें फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जगमे मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे ॥
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से देशोन्नति-रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करें ॥११॥

दूसरा पाठ

जाप देना

त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,

सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥ (मानतुङ्गसूरि)

हे परमात्मन् ? तुम्हारे नाम- मन्त्रका दिन - रात स्मरण करनेवाले, कर्म बन्धनों और संसारके भयोंसे बहुत शीघ्र ही छूट जाते हैं। अर्थात् उनको तुम अपने समान अविनाशी पद्में प्रतिष्ठित कर लेते हो। तुम्हारी भक्तिरूपी नौकासे सभी संसारी संसार समुद्र को पार कर लेते हैं, धन्य है ! इसलिये तुम्हारे नामको निरन्तर जपते रहना चाहिये। तुम नीचे लिखे नामोंसे जपे जाते हो।

तुम्हारे हजारों नाम हैं और सहस्रनाम स्तोत्र ही हैं। उसके पाठमात्रसे हृदयमें परम शान्ति और सुखका अनुभव होता है फिर तुम तो उन नामोंको सार्थक कर रहे हो !

पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र—

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

सोलह अक्षरोंका मन्त्रः—अरहन्त सिद्ध, आयरिय उवज्झाय साहु।

छह अक्षरोंके मन्त्रः—अरहन्त सिद्ध, अरहन्त सिसा, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः।

पांच अक्षरोंका मन्त्रः—अ सि आ उ सा।

चार अक्षरोंका मन्त्रः—अरहंत, अहिसाहु

दो अक्षरोंका मन्त्रः—ओं ह्रीं, सिद्ध।

एक अक्षरका मन्त्रः—ओम्।

ये सब मंत्र परमेष्ठीवाचक है। इनके सिवाय अनेक मंत्र है। "ओम्" से पांचों परमेष्ठियोंका ज्ञान कैसे होता है यह नीचे स्पष्ट करते हैं।

सिद्ध परमेष्ठीको अशरीरी और साधुको मुनि भी कहते है। इस तरह सब परमेष्ठियोंके पहले अक्षरोंको मिला कर "ओम्" बन जाता है :—

अरहंत	अ	आ		
अशरीर	अ			
आचार्य	आ	आ		
उपाध्याय	उ		ओ	
मुनि	म्			ओम्

अब मालाके १०८ दानोंका क्या मतलब है, यह बताते हैं, संरंभ, समारंभ, आरंभ = ३

मन, वच, तन = ३ × ३ = ६

कृत, कारित, अनुमोदन = ३ × ६ × २७

क्रोध, मान, माया, लोभ = ४ × २७ = १०८

अर्थात् दोष इन १०८ तरहसे बन जाते हैं, यह तालिकासे स्पष्ट है। इसलिये मन्त्र १०८ बार जपा जाता है।

किसी भी मन्त्रके पहले और पीछे "ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः" तीन बार बोलना चाहिए। इसलिये मालाके

ऊपर तीन दाने होते हैं।

जाप खड़े होकर और बैठकर दोनों तरह दी जासकती है मालाको जमीन पर नहीं गिरने देना चाहिए अथवा उसका अनादर नहीं करना चाहिए।

तीसरा पाठ

अभक्ष्य

जिन पदार्थोंके खानेसे त्रसजीवोंका घात होता हो; अथवा बहुत स्थावर जीवोंका घात होता हो, जो प्रमाद बढ़ानेवाले हों, और जो शरीरको अनिष्ट करनेवाले हों तथा जो भले पुरुषोंके सेवन करने योग्य नहीं हों वे सब अभक्ष्य हैं अथवा भक्षण करने योग्य नहीं हैं।

कमलकी डंडीके समान भीतरसे पोले पदार्थ जिनमे बहुतसे सूक्ष्म जीव रह सकते हैं तथा हरी मुलेठी, बेर, द्रोणपुष्प (एक प्रकारके पेड़का फूल), ऊमर, द्विदल[1] आदिके खानेमें त्रस जीवोंका घात होता है।

मूली, गाजर, लहसुन, अदरक, शकरकंदी, आलू, अरबी, (घुईयां), सूरण, तुच्छ फल (जिस फलमे बीज न पड़े हों) बिलकुल अनन्तकाय वनस्पति आदि पदार्थोंके खानेमें अनन्त स्थावर जीवोंका घात होता है।

शराब, अफीम, गाँजा, भंग, चरस, तंबाकू वगैरह प्रमाद बढ़ाने वाली चीजें हैं। भक्ष्य होनेपर भी जो हितकर (पथ्य)

---

१. कच्चे दूधमें, कच्चे दहीमें, और कच्चे दूधके जमे हुए दहीकी छाछमें उड़द, मूंग, चना आदि द्विदल (दो दाल वाले) अन्नके मिलानेसे द्विदल बनता है।

न हों उन्हें अनिष्ट कहते हैं। जैसे खाँसीके रोगवालेको बरफी हितकर नहीं है। जिसको उत्तम पुरुष बुरा समझें, उन्हें अनुपसेव्य कहते हैं। जैसे लार, मूत्र आदि पदार्थोंका सेवन।

इनके सिवाय, मक्खन, सूखे उदम्बर फल, चमड़ेमें रक्खे हुए हींग, घी आदि पदार्थ। आठ पहरसे ज्यादहका संधान (आचार) व मुरब्बा, कांजी, सब प्रकारके फूल, अजानफल, पुराने मूंग, उड़द, वगैरह द्विदलान्न, वर्षा ऋतुमे पत्तेवाले शाक और विना दले हुए उड़द मूंग वगैरह द्विदल अन्न भी अभक्ष्य हैं। चलित रस, खट्टा दही, छाछ तथा विना फाड़ो विना देखी हुई सेम, राजमास, (रोंसा) आदिकी फली आदि भी अभक्ष्य है।

प्रश्न

१. अभक्ष्य किसे कहते हैं? क्या सब ही शाक पात अभक्ष्य हैं?

२. अनिष्ट और अनुपसेव्यसे क्या समझते हो? प्रत्येकके दो दो उदाहरण दो।

द्विदल क्या होता है? क्या तमाम अनाज द्विदल हैं? यदि नहीं, तो कमसे कम चार द्विदल अनाजोंके नाम बताओ।

४. इनमें कौन कौन अभक्ष्य हैं:—बैंगन, दहीबड़ा, पेड़ा, गोभीका फूल, आम, मक्खन, खीरा, कमलगट्टा, आलू, कचालू सोया, पालक, घी, गाजर, नींबूका अचार, बादाम, चिरौंजीका रायता।

५. कुछ ऐसे अभक्ष्य पदार्थोंके नाम बताओ जिनमें त्रस जीवोंकी हिंसा होती हो।

चौथा पाठ।

आठ मूलगुण

मूलगुण मुख्य गुणोंको कहते हैं। कोई भी पुरुष जबतक आठ मूल गुण धारण नहीं करता, तबतक श्रावक नहीं कहला सकता है, श्रावक बननेके लिये इनको धारण करना बहुत जरूरी है। मूल नाम जड़का है, जैसे जड़के विना पेड़ नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार विना मूलगुणोंके श्रावक नहीं हो सकता।

श्रावकके ये आठ मूल गुण हैं—तीन मकारका त्याग अर्थात् मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुका त्याग और पांच उदुम्बर फलोंका त्याग।

१ शराब वगैरह मादक वस्तुओंके सेवन करनेका त्याग करना मद्यत्याग है अनेक पदार्थोंको मिलाकर और उनको सड़ाकर शराब बनाई जाती है। इस कारणसे उसमें बहुत जल्दी असंख्यात जीव पैदा हो जाते हैं अतः उसके सेवन करनेमें जीवोंकी महान् हिंसा का पाप लगता है। इसके सिवाय उसको पीकर आदमी पागलसा हो जाता है, और तो क्या शराबियोंके मुंहमे कुत्तेभी मूत जाते हैं। इसलिये शराब तथा भंग चरस वगैरह मादक वस्तुओंका त्याग करना ही उचित है।

२ मांस खानेका त्याग करना मांस त्याग कहलाता है दो इन्द्रिय आदि जीवोंके घात करनेसे मांस होता है। मांसमें अनेक जीव हर समय पैदा होते और मरते रहते हैं। मांसको छूनेसे ही वे जीव मर जाते हैं। इसलिये जो मांस खाता है, वह अनन्त जीवोंकी हिंसा करता है। इसके सिवाय मांसभक्षणसे अनेक प्रकारके असाध्य रोग हो जाते हैं और स्वभाव क्रूर व कठोर हो जाता है, इस कारण मांसका त्याग करना ही उचित है।

६ शहद खानेका त्याग करना मधुत्याग है। शहद मक्खियों का वमन (कय) है। इसमें हर समय छोटे छोटे जीव उत्पन्न होते रहते हैं। बहुतसे लोग मक्खियोंके छत्तेको निचोड़कर शहद निकालते हैं। छत्तेके निचोड़नेमें उसमेंकी मक्खियां और उसके छोटे छोटे बच्चे मर जाते हैं और उनका सारा रस शहदमें आ जाता है जिसे देखनेसे ही घिन आती है। ऐसी अपवित्र वस्तु खाने योग्य नहीं हो सकती इसका त्याग करना ही उचित है।

४–८ बड़, पीपर, पाकर, कठूमर, (कटहल) और गूलर इन फलोंका त्याग करना पांच उदुम्बरों का त्याग करना कहलाता है। इन फलोंमें छोटे छोटे अनेक त्रस जीव रहते है। बहुतोंमें साफ साफ दिखाई पड़ते हैं और बहुतोंमें छोटे छोटे होनेसे दिखाई नहीं पड़ते। इन फलोंके खानेसे वे सब जीव मर जाते है, इसलिए इनके खानेका त्याग करना ही उचित है।

प्रश्न

१ मूलगुण किसे कहते हैं और ये गुण किसके होते हैं?

२ मूलगुण कितने होते हैं? नाम बताओ।

३ एक जैनीने सर्वथा जीवहिंसाका त्याग कर दिया, तो बताओ वह अष्टमूलगुणोंका धारी है या नहीं?

४ मद्यसेवन करनेसे क्या हानियां होती हैं? मांसका त्यागी मद्यसेवन करेगा या नहीं?

५ क्या सबही फलोंके खानेमें दोष है या केवल बड़, पीपर वगैरह फलोंमें ही? और क्यों?

पांचवां पाठ

पञ्चपरमेष्ठी

परमपद अर्थात् उत्कृष्ट पदमें विराजनेवाले परमेष्ठी कहलाते हैं ये पाँच होते हैं। अरहन्त, सिद्ध, परमेष्ठीको भगवान, परमात्मा अथवा देव कहते हैं और आचार्य, उपाध्याय और साधु ये साधु अथवा गुरु कहलाते हैं।

इन्हीं पाचों परमेष्ठियोंको णमोकारमन्त्रमें नमस्कार किया गया है।

तीर्थंकर आदि अरहन्त कहे जाते हैं। उन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का नाश किया और सिद्ध परमेष्ठी आठों कर्मोंका नाश कर देते हैं। इसलिये अरहन्तोंकी अपेक्षा सिद्ध भगवान् अधिक पूज्य हैं फिरभी अरहन्त भगवान्‌के द्वारा संसार का साक्षात् उपकार होता है। इसलिये पहले इन्हींको नमस्कार किया जाता है।

अब संक्षेपसे इनका स्वरूप बताते हैं:—

१. **अरहन्त**—जो ऊपर कहे हुये चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर चुके हैं, अनन्त-दर्शन अनन्त-ज्ञान, अनन्त-सुख और अनन्त वीर्य सहित हैं, अस्थि, मज्जा आदि सात धातुरहित परमौदारिक शरीर धारण करते हैं और जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं उन्हें अरहन्त परमेष्ठी कहते हैं।

इनमें ३४ अतिशय (१० जन्मके, १० ज्ञानके और १४ देवकृत), ८ प्रतिहार्य्य और ४ अनन्तचतुष्टय इस प्रकार ४६ गुण होते हैं।

२. सिद्ध—ये ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंका नाश करते हैं, लोक और अलोकको जानने देखनेवाले होते हैं और देहरहित होकर भी पुरुषके अन्तिम शरीरके आकारके होते हैं। ये ही सिद्ध परमेष्ठी कहे जाते हैं।

इनमें आठों कर्मोंके अभावसे ये आठ गुण प्रगट होते हैं:—क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनन्तवीर्य और अव्याबाध।

३. आचार्य—दर्शन, ज्ञान, वीर्य, चारित्र और तप इन पांच आचारोंमें जो मुनि स्वयं लीन रहें और दूसरोंको इनमे लीन करें उन्हें आचार्य्यपरमेष्ठी कहते हैं।

इनके ३६ गुण इस प्रकार हैं:—१२ तप, १० धर्म्म, ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति।

४. उपाध्याय—जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सहित हैं और सदा धर्म्मका उपदेश देते हैं उन्हे उपाध्याय परमेष्ठो कहते हैं। ये ११ अङ्ग और १४ पूर्वोंका ज्ञान रखते हैं। यही २५ गुण इनमे होते हैं।

५. साधु—जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित मोक्षमार्ग के कारणभूत सम्यक्चारित्रको साधते हैं उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

इनके २८ मूल गुण होते हैं। ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियों का विजय, ६ आवश्यक और शेष ७ गुण।

पाँचवां पाठ

वीर-शासन

जिसकी दया-दृष्टिसे हिंसक जन्तु बने थे दया-निधान।
किया असंख्यों जीवधारियोंका जिसने जगका कल्याण ॥
मृग, शावक औ शेर, अजा जल एक घाटपर पीते थे।
एक ठौर मिल मोद मनाते सभी भेड़िये चीते थे ॥
हिंसा-सी पिशाचिनीको दे डाला जिसने निर्वासन।
वन्दनीय उस वीर-प्रभुका धन्य-धन्य वह प्रिय शासन ॥१॥
ऊंच-नीचका भेद मिटाकर बांधा समताका सम्बन्ध।
भर दी नर-रूपी पुष्पोंमें दया भावकी नूतन गन्ध ॥
राग-द्वेष दुर्भाव मिटाकर हृदय-सुमन सब दिये खिला।
बिखरी मानवताकी मालाके मोती सब दिये मिला ॥
दिया अहिंसाकी देवीको अति ऊंचा पावन आसन।
वन्दनीय उस वीर-प्रभुका धन्य-धन्य वह प्रिय शासन ॥२॥
जिनके चरणों पर इन्द्रादिक नाना रत्न चढ़ाते थे।
ध्यानमग्न जिनके शरीरसे वन-पशु देह खुजाते थे।
बाघ- निदाघ-समयमें जिनकी छायाको अपनाते थे।
नाग सूँड रख जिस मुनिवरके चरणोंमें सो जाते थे ॥
खग करते थे निकट बैठकर णमोकारका उच्चारण।
वन्दनीय उस वीर-प्रभुका धन्य-धन्य वह प्रिय शासन ॥३॥
खिल उठती थी उषा देखकर जिनका दिव्य अलौकिक तेज।
प्रकृति बिछा देती थी नीचे हरी मखमली दूर्वा-सेज ॥
मेघ तान देते थे जिनके सिर पर शीतल छाया छत्र।
दर्शन करने मानो प्रभुके होते थे नभपर एकत्र ॥
प्रभु-तन आभा बिजली बनकर करती थी नभमें गर्जन।
वन्दनीय उस वीर प्रभुका धन्य-धन्य वह प्रिय शासन ॥४॥

छठवां पाठ

जैन-पर्व

(ले०—जिनवाणीभूषण सेठ रावजी सखारामजी दोशी)

जैनी-त्योहारोंको पर्व कहते हैं। प्रत्येक महीनाकी अष्टमी और चतुर्दशी पर्वतिथि कहलाती हैं। इनमें श्रावक एकाशन, उपवास अथवा किसी रसका त्याग वगैरह किया करते है और दिनभर धर्मध्यानपूर्वक विताते है।

अष्टान्हिका पर्व—वर्षमें तीन बार मनाया जाता है। आषाढ़ कार्तिक और फाल्गुनकी शुक्ला(सुदी) अष्टमीसे पूर्णिमा (पूनम) तक आठदिन यह पर्व रहता है। इन आठदिनोंमे नन्दीश्वर पूजा होती है। कितने ही श्रावक श्राविकायें आठ दिनका अथवा अपनी शक्तिके अनुसार उपवास, एकाशन अथवा ब्रह्मचर्य आदिका नियम करते हैं। इस पर्वमें, नन्दीश्वरद्वीपके बावन अकृत्रिम जिन मन्दिरोंमे विराजमान प्रतिमाओंका पूजन, चारों प्रकारके देव आकर करते हैं। यहां मनुष्य नहीं पहुँच सकते। इसलिये ये जिन मन्दिरोंमे ही नन्दीश्वरप्रतिमाकी स्थापना कर पूजन करते है। इनदिनोंमे कोल्हापुर, सांगली, बेलगाव और दक्षिण कर्नाटकमे अच्छा उत्सव मनाते है।

पर्युषण पर्व—भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीसे शुक्ला चतुर्दशी तक दश दिन मनाते हैं। इसे ही दशलाक्षणिक पर्व कहते है। इन दिनोंमे उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य इन दश धर्मोंको प्रतिदिन पूजा होती है। प्रतिदिन अभिषेक और तत्वार्थसूत्रका अर्थ बांचा जाता

है। यह पर्व समस्त भारतवर्षके प्रत्येक जैनोंद्वारा बहुत आनन्द और भक्तिपूर्वक मनाया जाता है। इन दिनोंमें ब्रह्मचर्य्य, एकाशन, उपवास, आदि अनेक धर्म्माचरण किये जाते हैं और हजारों की संख्यामें प्रतिवर्ष उपयोगी संस्थाओंके लिये दान दिया जाता है। इसी प्रकार माघ और चैत्रमें भी सुदी पंचमीसे सुदी १४ तक दस दिन तक यह पर्व मनाया जाता है।

आश्विन वदी अमावास्याके सवेरे पांच बजे श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे। इसीसमय श्रावक, निर्वाण लड्डू चढाते हैं। इस समय देवोंने रत्नमयी दीपकोंसे महावीरस्वामीकी पूजा की थी। इसी कारण यह पर्व प्रसिद्ध हुआ। आज महावीर स्वामीकी पूजा और उनका चरित पढ़ा जाता है।

महावीर स्वामीकी निर्वाणभूमि पावापुरीमें आज विशेष उत्सव मनाया जाता है।

वैशाख शुक्ला तृतीयाको हस्तिनापुर (मेरठ) में राजा श्रेयांसने श्री आदिनाथ भगवानको ईखके रसका आहार कराया था। इसी दिनसे आहारदानकी प्रथा प्रचलित हुई। आज आदिनाथ भगवान्‌की प्रतिमाका ईखके रससे अभिषेक करते हैं। इस पर्वको अक्षय तृतीया कहते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीको श्रुतपञ्चमी कहते हैं। इसी दिन दिगम्बर जैन आचार्योंने शास्त्रोंकी रचना की थी। इसी लिये श्रुतपञ्चमी कहते हैं। आज मन्दिरोंके ग्रन्थोंको, भंडारों और आलमारियोंमेंसे बाहर निकाल कर साफ करते हैं। फटे पुराने वेष्टन आदि बदलते हैं और ग्रन्थ रखनेकी अलमारी आदिको ठीक करते हैं तथा शास्त्रका पूजन करते हैं।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको महावीर जयन्ती मनाते हैं। आज जैनियोंके अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामीका जन्म हुआ था। इसलिये आज उनका जीवनचरित पढ़ते हैं और उनकी पूजा करते हैं तथा जगह २ विद्वान् लोग महावीरस्वामीके जीवनचरित पर प्रकाश डालते हैं। उन्होंने संसारके प्राणियोंको हितके मार्ग का उपदेश दिया था।

सातवां पाठ

छह कर्म

बालको ! तुमको आलोचना पाठ याद है। इसका मतलब भी समझते हो, इसमें सवेरेसे शामतक एक गृहस्थीसे अनेक प्रकार की हिंसायें हो जाती हैं अथवा गृहस्थसे बहुत अपराध बन पड़ते हैं। वे अपराध आत्माको पवित्र नहीं बनने देते। इसलिये गृहस्थोंकी छह आवश्यक क्रियायें बताई गई हैं, जिनका आचरण करनेसे गृहस्थ अपना कर्तव्य-पालन कर सकता है।

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने॥

अर्थ—जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना, गुरुओंकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, संयमका पालन करना, तपका अभ्यास करना और दान देना ये गृहस्थोंके छह आवश्यक कर्म हैं।

देवपूजा—का अर्थ अरहन्त परमेष्ठी (भगवान्) और सिद्ध परमेष्ठीकी पूजा करना है। श्रीऋषभ आदि चौबीस तीर्थं-

कर देव कहलाते हैं। पूजाका अर्थ है, उनमें विद्यमान अनन्त गुणोंका वर्णन करना और उनके गुणोंको प्राप्त करनेकी सदा भावना करना।

आजकल वे तीर्थंकर नहीं हैं, इसलिये उनके आकारकी प्रतिमायें बनवाकर उनमें तीर्थंकरोंके गुणोंकी स्थापना करते हैं। स्थापनाका अर्थ तीर्थंकरोंके गुणोंको प्रतिमामें विद्यमान समझना है। इसलिये जैसे साक्षात् तीर्थंकरोंके दर्शनसे आनन्द होता था वैसा ही आनन्द मनाना और आदर-सत्कार करना उनकी पूजा कहलाती है। पूजा द्रव्यसे अर्थात् जल, चन्दन आदि आठ द्रव्यों से और अपने पवित्र भावोंसे होती है। श्रावकोंको द्रव्यपूजा और मुनियोंको भावपूजा करनी चाहिये।

पूजा करनेसे कर्मोंका नाश होता है। कर्मोंका नाश होनेपर प्रत्येक जीव, संसार-पूज्य बन जाता है। यही पूजा करनेका उद्देश्य है।

जहां मन्दिर न हो वहां भगवान्‌की परोक्ष पूजा करे। स्तोत्र पढ़े, सामायिक करे, जाप देवे और शास्त्रका स्वाध्याय करे।

(२) गुरुभक्ति—गुरु शब्दका अर्थ आजकलके पढ़ाने वाले गुरु ही नहीं किन्तु—

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥"

अर्थ—जो पांच इन्द्रियके वशमें न हो, आरम्भ-परिग्रहसे रहित हो, ज्ञान और ध्यानमें लीन रहता हो उसे तपस्वी, साधु मुनि अथवा गुरु कहते हैं। ऐसे पूज्य गुरुओंकी भक्ति करना

चाहिये। भक्तिका मतलब उनकी संगति करना, उनकी वैयावृत्य करना और उनके सदुपदेशोंसे लाभ उठाना है। साक्षात् उपकार करने वाले गुरु ही हैं।

सच्चे गुरु ही तरन-तारन कहलाते हैं। स्वयं संसाररूपी समुद्रसे पार होते हैं और दूसरोंको उपदेश देकर पार कराते हैं।

(३) स्वाध्याय—जैन धर्मके स्वरूपको प्रकट करनेवाले शास्त्रोंको चौकीपर आदरपूर्वक विराजमान कर स्वयं पढ़ना और दूसरोंको सुनाना स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्याय करनेसे ज्ञान बढ़ता है। विषय-कषायोंसे प्रवृत्ति हटती है। परिणाम निर्मल हो जाते हैं।

(४) संयम—पांचों इन्द्रियों और मनको वशमें करना संयम कहलाता है। इसके लिये काममें आनेवाली भोग और उपभोगकी वस्तुओंका प्रतिदिन नियम करना चाहिये। खाने पीनेकी चीजें जो एक बार काममें लाई जा सकें, उन्हें भोग कहते हैं जैसे भोजन और जो बार२ काममें लाई जा सकें, उन्हें उपभोग कहते हैं जैसे वस्त्र सवारी आदि। प्राणीमात्रकी रक्षा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। यही संयम कहलाता है। संयमके पालनेसे, संसारसे छुटकारा हो जाता है। संयम मनुष्यगतिमें ही पाला जा सकता है। इसलिये जहाँ तक बने संयमसे रहना चाहिये। जिन कामोंसे इन्द्रियोंको अच्छा मालूम होता है वे सब विषय संसारके बढ़ाने वाले हैं। जैसे गद्दे तकिये और मलमलके बिछौने, हलुवा, मिठाई, पकवान, खाना, इत्र फूल वगैरह सूंघना, नाटक सिनेमा और वेश्याओंकेनाच वगैरह देखना वेश्याओंके

गाने, उनके रिकार्ड सुनना और अच्छा खाने पहिनने वगैरहमें मनको रोके रहना चाहिये सच्चे मुनि ऐसा ही करते हैं। हमें भी अभ्यास करना चाहिये।

(५) तप—आत्माको ध्यान रूपी अग्निमें आत्माको तपाना तप है। इसमें आत्माका बल बढ़ता है। जैसे नहीं खाना, कम खाना, कोई रस (मिठाई, खटाई; दूध, तेल, घी आदि) छोड़ देना एकान्तमें सोना और सामायिक अर्थात् ध्यान लगाना आदि इसी प्रकार किये हुये अपराधोंको गुरु या भगवानके सामने प्रकट करना, देव शास्त्र और गुरुका आदर करना उनकी सेवा करना, शास्त्रोंका मनन करना, मल-मूत्रका निर्जन्तु स्थानमें छोड़ना और ध्यान करने वगैरहसे अन्तरङ्गकी शुद्धि होती है। इन सबसे आत्मा निर्मल बनता है।

(६) दान—अपने और दूसरेके उपकारके लिये, किसी प्रत्युपकार यानी बदलेमें यश वगैरहकी इच्छा न कर, आहार, वस्त्र औषधि और शास्त्रका देना दान कहलाता है। मुनि, व्रती, श्रावक आदि सम्यग्दृष्टि उत्तम पुरुषोंको भक्तिपूर्वक दान करना पात्रदान और दीन, दुःखी लूले, लंगड़े, कोढ़ी और असमर्थोंको दान करना करुणा-दान कहलाता है।

दान देय मन हरष विशेषै। इह भव परभव जस सुख देखै।

अर्थात् दान देनेसे मनमें प्रसन्नता होती है। दानसे इस भवमें और दूसरे भवमें यश तथा सुख मिलता है।

प्रश्न

१. गृहस्थोंके अथवा श्रावकोंके कितने दैनिक कर्म होते हैं ?

हैं ? इनके पालनसे क्या लाभ है।

२. इन्हें दैनिक कर्म्म क्यों कहते हैं ? ये कितने होते हैं नाम बताओ।

३. देव पूजा किसे कहते हैं ? क्या आजकल देव हैं ? फिर उनकी पूजा कैसे करते हो ?

४. स्वाध्यायका क्या अभिप्राय है ? इनसे क्या लाभ है।

५. दान किसे कहते हैं ? करुणादानका क्या मतलब है ?

आठवां पाठ

ग्यारह प्रतिमाएं

प्रतिमा के कहनेसे श्री जिनमन्दिरमें विराजमान अरहन्त भगवानका ज्ञान होता है लेकिन यहां यह आशय नहीं है।

प्रतिमाका स्वरूप

संयम अंश जग्यो जहाँ भोग अरुचि परिणाम।
उदय प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम॥

(कविवर बनारसीदास)

यहां प्रतिमाका अर्थ श्रावकोंके गुणस्थान अथवा पदोंसे है। इन्हींको व्रत भी कहते हैं। ये ग्यारह होते हैं:—

श्रद्धा१ कर व्रत२ पालैं, सामायिक३ दोष टालैं, पौसा मॉड४ सचित्तकौ त्याग५ लौ घटायकैं। रात्रिभुक्ति६ परिहरैं, ब्रह्मचर्य्य७ नित धरै, आरम्भको त्याग८ करैं मन वच कायकै। परिग्रहकाज९ टारैं अघ अनुमति१० छारैं, स्वनिमित

कृत११टारै, आतम लौ लायकैं। सब एकादश येह, प्रतिमा जु शर्म्मगेह, धारैं देशव्रती नेह धर्म उर बढ़ायकैं।

श्रावक उन्नति करता हुवा पहलीसे दूसरी, दूसरीसे तीसरी तीसरीसे चौथी इस प्रकार ग्यारहवीं प्रतिमा तक धारण करता है इसके बाद मुनि और साधु हो सकता है।

आगेकी प्रतिमाओंको, धारण करनेवालेको पिछली प्रतिमाओंका धारण करना आवश्यक है।

१. **दर्शनप्रतिमा**—सम्यग्दर्शन सहित अष्ट मूलगुण धारण करना और बाईस अभक्ष्य तथा सात व्यसनोंका त्याग करना दर्शन प्रतिमा है। दर्शनप्रतिमावालेको **दार्शनिकश्रावक** कहते हैं। यह सदा संसारसे उदासीन, दृढ़ निश्चयवाला और सांसारिक फलकी इच्छा नहीं करनेवाला होता है।

२. **व्रतप्रतिमा**—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंका अतिचाररहित पालन करना व्रतप्रतिमा है। यह प्रतिमाधारी **व्रतीश्रावक** कहलाता है।

३. **सामायिकप्रतिमा**—प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सायंकाल दो दो घड़ी विधिपूर्वक अतिचार रहित सामायिक करना सामायिक प्रतिमा कहलाता है।

सामायिककी विधि इस प्रकार है:—पहले पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके खड़ा होवे। फिर तीन आवर्त और एक नमस्कार कर क्रमसे दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें तीन-तीन आवर्त्त और एक २ नमस्कार करे। मन, वचन और कायको शुद्ध कर पांच पापोंका त्याग करना, सामायिकपाठ बोलना, णमोकारमंत्रकी जापदेना

भगवान्‌की परमशान्त मुद्रा तथा चेतनास्वरूप शुद्ध आत्माका एवं कर्मों के उदय रूप रस और बारह भावनाओंका चिन्तवन और बादमें खड़ा होकर नौ बार णमोकारमन्त्र पढ़कर नमस्कार करना चाहिये।

सामायिकका उत्कृष्ट समय छह घडी, मध्यम चार घड़ी और जघन्य दो घड़ी है। चौबीस मिनटकी एक घड़ी होती है।

४. प्रोषधप्रतिमा—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको १६ प्रहरतक अतिचार रहित प्रोषधोपवास करना और इस दिन व्यापार, आरम्भ, भोजन, वाहन आदि सब भोगोपभोग सामग्रीका त्यागकर एकान्तमें स्वाध्याय व धर्मध्यान करना प्रोषधप्रतिमा है। मध्यम १२ और जघन्य ८ प्रहरका प्रोषध होता है।

५. सचित्तत्यागप्रतिमा—कच्चे मूल (आलू, मूली, गाजर आदि) फल, शाक, शाखा, कौंपल, अंकुर, फूल और कन्द वगैरह नहीं खाना सचित्तत्याग है।

जीवसहित पदार्थको सचित्त कहते हैं। यह सचित्तत्याग प्रतिमा है

६. रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा—मन, वचन, कायसे और कृत, कारित, अनुमोदनासे रातमें सब प्रकारके आहारका त्याग करना रात्रि-भोजनत्यागप्रतिमा है। सूर्यास्त होनेसे दो घड़ी पहले और सूर्योदय होनेके दो घड़ी बादतक आहारका त्याग करना चाहिये।

आहार चार प्रकारका होता है—१ अन्न (दाल भात आदि) २ पान (दूध पानी आदि), ३ खाद्य (पेड़ा बर्फी आदि), और ४ लेह्य (रबड़ी आदि)।

इसे "दिवामैथुनत्याग" प्रतिमा भी कहते है। इसका अर्थ दिनमे मैथुनका त्याग करना है।

रात्रीभोजनत्यागसे जीवोंकी हिंसा बचती है और प्राणियों पर दयाभाव पैदा होता है।

७. ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा---मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदनासे स्त्रीमात्रका त्याग करना ब्रह्मचर्य्य प्रतिमा है।

स्त्रीयोंकी कथा आदि करना भी ठीक नहीं है। इसे यह सोचना चाहिये कि स्त्रीशरीर मलका कारण है, मलकी खानि है, इससे मूत्र आदि मल बहता रहता है, दुर्गन्ध भरा है और भयङ्कर है। ऐसे अङ्गका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये।

८. आरम्भत्यागप्रतिमा—हिंसाके कारणस्वरूप नौकरी, खेती, व्यापार आदि आरम्भों-कामों का मन, वचन, कायऔर कृत कारित अनुमोदनासे त्याग करना आरम्भत्यागप्रतिमा है। इस प्रतिमाका धारी स्नान, दान और पूजन आदि कर सकता है।

९. परिग्रहत्यागप्रतिमा—केवल वस्त्र रखकर धन-धान्य, दासी दास आदि दस प्रकारके बाह्य परिग्रहों से मोहका त्याग करना परिग्रहत्यागप्रतिमा है। इस प्रतिमाधारीको छल-कपटसे रहित होना चाहिये और परिग्रहकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये।

१०. अनुमतित्यागप्रतिमा—जो खेती आदि कामों, धनधान्य आदिमें और विवाह आदि कामोंमें रागद्वेष रहित अथवा ममता रहित हो उसे अनुमतित्यागप्रतिमा कहते हैं। यह सांसारिक कार्यों की अनुमोदना भी नहीं कर सकता। यह अपने लिये भोजन आदिके लिये कुछ नहीं कह सकता। उदासीन होकर,

प्राय: चैत्यालय अथवा मठ आदिमे रहकर धर्मध्यानमें तत्पर रहता है।

११. उद्दिष्टत्यागप्रतिमा—जो घर छोड़कर साधुओंके आश्रममें जाकर गुरुओंके व्रत ग्रहण करे, लंगोट अथवा खण्ड-वस्त्र- (जो शरीरकी लंबाईसे कुछ कम हो)धारण करे, भिक्षा लेकर भोजन करे, तप करे, और व्रतोंको ग्रहण करे उसे उद्दिष्ट-त्याग प्रतिमा कहते है।

इस प्रतिमाके दो भेद हैं—१ क्षुल्लक व २ ऐलक। क्षुल्लकके पास एक चादरभी रहती है और ऐलकके पास लंगोट ही रहता है क्षुल्लक बैठकर पात्रमे भोजन करते हैं और ऐलक अपने हाथोंमें भोजन करते है। ऐलक पीछी रखते और कशलोंच करते हैं और क्षुल्लक नरम वस्त्रसे भूमिको शुद्ध करते है। आचार्य महाराज, ऐलक और मुनिका व्रत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को देते है।

पहली प्रतिमासे छठी प्रतिमा तकके जघन्यश्रावक, सातवींसे नवमी तक मध्यम श्रावक और दसवीं तथा ग्यारहवीं प्रतिमाके धारक उत्तम श्रावक कहलाते हैं।

प्रश्न

१. प्रतिमा किसे कहते है ?

२. प्रतिमायें कितनी होतीं है और उनमे क्या भेद है ?

३. प्रत्येक प्रतिमाका स्वरूप बताओ।

४. ऐलक और क्षुल्लक कौन-सी प्रतिमा-धारी होते है ? इनमें क्या अन्तर है ?

५. रात्रिभोजनत्यागका दूसरा नाम क्या है ?

६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा वाला सचित्तत्यागी होगा या नहीं ?

७. सामायिक करनेकी विधि क्या है ? उसमें क्या विचारना चाहिए और वह कितने समय तक करनी चाहिए ?

नवमा पाठ

प्रगति गीत*

(श्रीमती हंसकुमारी तिवारी)

आगे चल, चल, आगे चल,
शंका भय सब त्यागे चल।
चल आगे चल ॥

बाधायें जो अड़ी खड़ी हों, मगमें, सारे अग-जगमें।
कठिनाई बड़ी खड़ी हों, अवसाद भरा रग-रगमें॥
संकल्प हिमालयका हो, तू दृढ़ रह, भय ! आगे चल।
चल, आगे चल ॥ १ ॥

पग-पगमें प्राण हरा हो, उत्साह न म्लान जरा हो।
हो लगन लगी आगेकी, स्वरमें जय गान भरा हो॥
कांटे हों, आग बिछी हो, हंसदे जीवन ! आगे चल।
चल, आगे चल, ॥ २ ॥

दे बिछा मरण निज अंचल, मत तरुण-चरण हो चंचल।
विस्मित हो विश्व-विधाता, सृष्टि हो पल-पल टल मल ॥

---

*'किशोरसे उद्धृत।

मुंहमें हो गीत, अधर-पर, मुस्कान कदम आगे चल।
चल, आगे चल ॥ ३ ॥

दसवां पाठ

अहिंसा

(सिद्धान्तरत्न पं० नन्हेलालजी शास्त्री)

धर्मका लक्षण अहिंसा है। भारतवर्षमें जितने मत प्रचलित हैं उन सबने अहिंसा धर्मको किसी न किसी रूपमें अवश्य स्वीकार किया है किन्तु जैनमतने अहिंसाका साङ्गोपाङ्ग विशद वर्णन कर उसे पूर्णरूपसे अपनाया है। अहिंसा क्या है, इसको समझनेके पहिले उसके प्रतिपक्षी हिंसाको निम्नप्रकार समझ लेना आवश्यक है। प्रमाद और कषायसे अपने व दूसरे जीवोंके प्राणोंका घात करना व दिल का दुखाना हिंसा है। जो द्रव्यहिंसा और भावहिंसाके भेदसे दो तरहकी है। किसी जीवको जानसे मार देना द्रव्यहिंसा है। जिस तरह हमको अपने प्राण प्यारे है उसी तरह संसारके सब जीवोंको अपने २ प्राण प्यारे हैं। इसलिये अपने प्राणोंके समान ही दूसरे जीवोंके प्राणोंको जानकर, कभी किसी जीवका घात नहीं करना द्रव्यअहिंसा है। गृहस्थ संकल्पीहिंसाका त्यागी होता है। गृहस्थको मन, वचन, कायसे किसी जीवको मारनेका इरादा नहीं करना चाहिये, नहीं तो उसे भारी पाप लगता है। जैसे धीवर, घरसे चलकर मनमें यह विचार करता है कि मैं आज तालाबमेंसे

निश्च मछलियां मारूंगा। धीवर तालाब पर पहुँचकर बार २ जाल पानीमें डालता है किन्तु उसके जालमें सुबहसे शामतक एक भी मछली नहीं आती है। फिर भी धीवरको बहुत भारी हिंसाका पाप लगता है; क्योंकि वह पहिलेसे ही अनेक मछलियोंके मारनेका इरादा कर चुका है। इसीका नाम **संकल्पीहिंसा** है। गृहस्थको संकल्पीहिंसाके त्यागके साथ २ **विरोधी, उद्योगी** और **आरम्भीहिंसा** के बचावका भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। शेर सर्प बिच्छू, ततइया आदि जीवोंके ऊपर भी अन्यजीवोंके समान दयाका भाव होना चाहिये। जो निर्दयी इन जीवोंको देखते ही इनको जानसे मार डालते हैं वे बड़ा भारी पाप करते हैं

जिसका जो स्वभाव है वह उससे कभी नहीं जा सकता है। बिच्छू आदिका स्वभाव वैसाही है; कभी उनका घात नहीं करना चाहिए। इसीका नाम तो दया और अहिंसा है।

हां गृहस्थ **एकदेशहिंसा**का त्यागी है। वह संकल्पसे किसी जीवको मारनेका इरादा नहीं करेगा और न किसीको मारेगा ही किन्तु अपने धर्म, कुटुम्ब, ग्राम और देशके ऊपर आपत्ति आने पर उनकी रक्षाके लिये तलवार और बन्दूकसे काम लेगा। ऐसी हालतमें वह हिंसक नहीं कहा जायेगा; क्योंकि उसका भाव अपने धर्म्म और कुटुम्बादिकी रक्षा करनेका है; दूसरोंको संकल्प कर मारने का नहीं। यही कारण है कि पूर्वकालमें सम्राट् बिम्बसार चन्द्रगुप्त; महाराजा अमोघ और खारवेल आदि अनेक जैन राजा हुये हैं, जिन्होंने बड़े २ देशोंका शासन करते

हुये अहिंसाका परिपालन किया है। उक्त महाराजाओंने अन्यायी और अत्याचारियोंके आक्रमणको दूर करनेके लिये अस्त्र शस्त्र आदिको चलाकर अपने देश, धर्म और प्रजाकी रक्षा की। इसी लिये वे अहिंसा धर्मके उपासक समझे गये।

इसके अलावा सबसे भारी हिंसाका सम्बन्ध हमारे उन खोटे रागद्वेष परिणामोंमें है, जिनसे हमारा या दूसरे जीवोंका नुकसान होता है। यदि हम किसीको गाली देते हैं या उसको कष्ट पहुँचानेके लिये उसका बुरा चिन्तवन करते हैं; क्रोध करते हैं, धन चुराते हैं, झूठ बोलते हैं, झूठी नालिश करते हैं, झूठी गवाही देते हैं तथा उसे अपमानित करनेके लिये अन्य अन्य साधनोंको जुटाते हैं तो इन कार्योंसे हमें पहिले जरूर हिंसक बनना पड़ता है। क्योंकि इन कुकार्योंके करनेसे हमारी आत्मामें बड़ा भारी क्लेश और संतापका पैदा होना ही आत्माकी हिंसा है। पश्चात् उक्त कार्योंसे दूसरोंको दुःखित करना, परात्माकी हिंसा है। जो कोई भी दूसरोंके आहत करने व उनको कष्ट पहुँचानेका प्रयत्न करता है वह पहिले अपनी आत्माको हिंसक जरूर बना लेता है। क्योंकि दूसरोंको दुःख पहुंचानेके लिये जिन २ राग-द्वेष भावोंका वह सञ्चय करता है, उनसे अपनी आत्माका घात हो ही जाता है, बादमें दूसरों की आत्माका घात हो चाहे न हो। अतः सबसे पहिले हम सबको उन खोटे भावोंसे बचना चाहिए, जिनमें अपनी और परकी आत्माको विना जलाये ही जलना पड़ता है। झूठ चोरी,कुशील और परिग्रह जितने भी पाप है वे सब हिंसामें ही गर्भित हैं। अतः जो मनुष्य पापोंसे बचना चाहता है उसे कभी किसी प्रकारकी हिंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पापों तथा राग-द्वेष आदिसे बचना अहिंसा है।

ग्यारहवाँ पाठ

तीन लोकका वर्णन

(ले०—सिद्धान्तमहोदधि पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य)

इस चराचर जगतमें सबसे बड़ा पदार्थ अलोकाकाश है, जो कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधः, इन छहों दिशाओं में अनन्तानन्त राजू फैला हुआ बर्फीके समान घन चौकोर है, आकाशको हम इन्द्रियसे नहीं जान सकते हैं। हां सर्वज्ञद्वारा कहे गये आगम वा युक्तियोंसे अतीन्द्रिय पदार्थोंका परिज्ञान कर लिया जाता है। उस घन और चौकोर आकाशके ठीक बीचमें लोकाकाश है, जो कि अनादिकालसे अनन्तकालतक अकृत्रिम है। किसीके द्वारा बनाया गया नहीं है और न किसी समयमें लोककी सृष्टि होती है और न प्रलय ही होता है। अतः जीव और अजीव पदार्थोंसे ठसाठस भरा हुआ यह लोक अनादिनिधन है।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंके समुदायको लोक कहते हैं। इस लोकसे घिरे हुये मध्यवर्ती आकाशको लोकाकाश कहते हैं।

यह लोक पूर्व, पश्चिम दिशामें नीचे सात राजू है क्रमसे घटता हुआ ऊपर आकर एक राजू चौड़ा रह गया है

और क्रमसे बढ़ता हुआ साढ़ेदश राजू ऊपर जाकर पांच राजू चौड़ा हो गया है पुनः चौदह राजू ऊपर क्रमसे घटता हुआ एक राजू रह गया है।

लम्बाई, दक्षिण और उत्तर सब जगह सात राजू है, सब तीनसौ तेतालीस घनराजू प्रमाण यह लोक है, लोकके ठीक बीचमें एक राजू चौड़ी, एक राजू लम्बी और चौदह राजू ऊंची त्रस नाली रक्खी हुई है।

यह लोक साठ हजार योजन मोटे तीन वातवलयों (हवाओं) पर डटा हुआ है।

अधोलोक, मध्यलोक, और ऊर्ध्वलोक ये तीन भेद लोकाकाशके किये गये हैं। लोकके ठीक बीचमें एक लाख चालीस योजन ऊंचा सुदर्शन मेरु नामका, पर्वत अनादि कालसे प्रतिष्ठित है, इस पर्वतके नीचके सात राजू भागको अधोलोक कहते हैं। और कुछ कम सात राजू इससे ऊपर ऊर्ध्वलोक समझा जाता है यथा मेरु बराबर ऊंचा नीचा और तिरछा असंख्यात योजनों लम्बा मध्यलोक है। अधोलोकमें सबसे नीचे एक राजूतक बादर निगोद जीव भरे हुए हैं और उससे ऊपर छह राजूओंमें सात पृथिवियां हैं, जिनमें पापकर्मोंके फलको भोगनेवाले असंख्यात नारकी जीव दुःखयातनाओंको सह रहे हैं। पांच स्थावरकायिक जीव लोकमें सर्वत्र पाये जाते हैं। जिस मध्यलोकमें हम लोग ठहरे हुये हैं उसका ठीक आकार लम्बे काठके तख्ताके समान है अर्थात् सात राजू लम्बा एक राजू चौड़ा और एक लाख चालीस योजन ऊंचा यह मध्यलोक है। जिस रत्नप्रभा पृथ्वीपर हम रहते हैं वह सात राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है।

यदि हम इसमें की त्रसनाली का ही नक्शा खींचें तो वह एक राजू लम्बा चौड़ा ठीक चौकोर बनेगा। फिरभी हम अपने ठहरनेके द्वीपमात्रका चित्र खींचें तो वह एक हजार योजन मोटा और एक लाख योजन लम्बा, चौड़ा थालीके समान बनेगा।

मध्यलोकमें जम्बूद्वीप लवण समुद्र आदिक असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

सबसे बीचमें जम्बूद्वीप है जोकि एक लाख योजन लम्बा चौड़ा गोल है, नीलपर्वतके निकट उत्तर-कुरुमें एक रत्नमय जामुनका वृक्ष है, इस कारण इस द्वीपका नाम जम्बूद्वीप अनादि कालसे चलता आ रहा है।

जम्बूद्वीपमें, हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह पर्वत पूर्व-पश्चिमकी ओर लम्बे पड़े हुये हैं, जिनसे जम्बूद्वीपके सात खण्ड हो जाते हैं। उन्हीं सात खण्डोंको भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत, इन सात क्षेत्ररूप रचना हो रही है।

दक्षिण दिशाकी ओर जिस भरतमें हम और आप रहते हैं, उसकी आकृति धनुषकी सी है। भरत क्षेत्रके ठीक बीचमें पचास योजन चौड़ा पच्चीस योजन ऊंचा और पूर्व पश्चिम कुछ अधिक दस हजार योजन लम्बा विजयार्ध पर्वत पड़ा हुआ है।

भरत से चिपटा हुआ १०५२ दस सौ बावन योजन चौड़ा कुछ अधिक चौबीस हजार योजन लम्बा तथा सौ योजन ऊंचा हिमवान पर्वत है। हिमवान पर्वतसे ऊपर एक हजार योजन लम्बा, पांचसौ योजन चौड़ा, दश योजन गहरा पद्म नामका सरोवर है।

उसमें (महा) गङ्गा और (महा) सिन्धु नामकी नदियां निकलती हैं। आजकल पञ्जाब से बङ्गाल तक बहने वाली क्षुद्र गङ्गा और सिन्धुओं से ये नदियां न्यारी है। दोनों नदियां उत्तर भरतक्षेत्र मे बहती हैं, विजयार्ध पर्वतकी गुफाओंमेंसे निकल कर दक्षिण भरत में बह कर लवणसमुद्र में मिल जाती हैं।

इस प्रकारसे भरतक्षेत्र के छह खण्ड हो जाते हैं। छह खण्डों के अधिपति को **चक्रवर्ती** कहते है। इन छह खण्डों में लवण-समुद्र की ओर के खण्ड को **आर्य खण्ड** कहते हैं। हमलोग आर्य खण्ड मे निवास करते है। आजकल देखे जा रहे यूरोप, अमरीका आदि देश सब इस आर्य खण्ड के भीतर ही हैं। शेष पाच खण्ड म्लेच्छ खण्ड कहे जाते हैं।

जम्बूद्वीपके ठीकबीचमे एक लाख चालीस योजन ऊंचा और भूमि में दस हजार योजन चौड़ा क्रम से घटता हुआ ऊपर एक हजार योजन चौड़ा **सुमेरु** पर्वत है।

इस पर्वतके ऊपर **पाण्डुक वनमें** तीर्थङ्करका जन्माभिषेक उत्सव मनाया जाता है। जम्बूद्वीपके चारो ओर दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र फैला हुआ है। लवण समुद्रके चारों तरफ चार लाख योजन चौड़ा धातकीखण्ड द्वीप है। इस द्वीपमें पूर्व पश्चिम दिशामें दो मेरु पर्वत हैं। जम्बूद्वीपसे दूनी रचना हैं। धातकी खण्डको सबओर घेरकर आठलाख योजन चोड़ा **कालो-दधि** समुद्र व्यवस्थित है। इसको चारों ओर घेरे हुये सोलह लाख योजन चौड़ा **पुष्कर द्वीप** है। इसके ठीक बीचमे **मानुषोत्तर** पर्वत पड़ा हुआ है। मनुष्य इसके बाहर नहीं जा सकते हैं। इस

कारण इसकी मानुषोत्तर संज्ञा है। मानुषोत्तरके पहिले आठ लाख योजन चोड़ा पुष्करार्धद्वीपमें दो मेरु हैं। मेरुओंके दोनों ओर क्षेत्र और पर्वतोंमे जम्बूद्वीपकी सी रचना है। इन ढाई द्वीपोंमे पांच भरत, पांच ऐरावत, और पांच विदेह इस तरह पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं। यहींसे मनुष्य सयमको धारण कर मुक्ति लाभ करते हैं। शेष स्थानोंपर भोगभूमियां हैं।

ढाईद्वीपसे आगे असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें व्यन्तरदेव और तिर्यञ्चजीव निवास करते हैं। हां अन्तिम आधे द्वीप और पूरे समुद्र तथा चारों कोनोंमें कर्मभूमिकी रचना है।

यहाँ समतल पृथ्वीसे सातसौ नब्बे योजन चलकर तारे हैं। तारोंसे दश योजन चलकर सूर्य है। सूर्यसे अस्सी योजन ऊपर चन्द्रविमान चलते है। इस प्रकार एकसौ दश योजन मोटे और असंख्यात योजन लम्बे चौड़े आकाशमे यह ज्योतिष्क मंडल है। ढाई द्वीपमे ये सुदर्शन मेरुकी प्रदक्षिणा करते रहते है। इसके बाहर जहांके तहाँ स्थित है। देखे जानेवाले सूर्य, चन्द्रमा और तारे ये सब विमान हैं। इनके ऊपर महल बने हुये है उन एक एकमें सैकड़ों हजारों ज्योतिष्क देव निवास करते हैं। सूर्य या चन्द्रविमान अनेक हैं। जम्बूद्वीपमे दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। आजका सूर्य कल विदेह क्षेत्रमें घूमता हुआ परसों पुनः यहां आकर प्रकाश करेगा। सुदर्शन मेरुके ऊपर कुछ कम सात राजूतक ऊर्ध्वलोक है। यहां वैमानिक देव निवास करते हैं, ऊर्ध्वलोकमे सबसे ऊंचे तनुवात-वलयके अन्तमें अनन्तानन्त सिद्ध परमात्मा विराजमान है। जिन्होंने सम्पूर्णकर्मों

का नाश कर अनन्तकाल तकके लिये अतीन्द्रिय आत्मीय अनुपम सुख प्राप्त कर लिया है, उन सिद्धोंको हमारा नमस्कार हो।

बारहवां पाठ

स्याद्वाद

(पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल न्यायतीर्थ, सम्पादक, जैनशिक्षण संदेश)

इसमें स्यात और वाद ये दो शब्द हैं। स्यात् का अर्थ कथञ्चित अर्थात किसी अपेक्षासे और वादका अर्थ कथन अथवा मान्यता है इसलिये स्याद्वादका स्पष्ट अर्थ 'सापेक्ष सिद्धान्त' है।

स्याद्वाद इतना गम्भीर विषय है कि इसपर अनेक आचार्यों ने अनेक महान ग्रन्थोंकी रचना की हैं और इतना सरल है कि साधारण मनुष्य भी उसे आसानीसे समझ सकता है।

स्याद्वादका काम है—परस्पर विरोधोंको दूर करना। जहां इसका उपयोग है, वहीं गम्भीरता और शान्ति है और जहां इसे अनावश्यक समझा जाता है वहीं अनैक्य अथवा विरोध उपस्थित हो जाता है। जैसे एक मनुष्य अपने पिताको पिता कहता है। यहां पिता कहलानेवाला सभीका पिता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह किसीका लड़का है, किसीका भानजा है, किसीका मामा है, किसीका काका है, किसीका नाती है, किसीका बाबा है और किसीका कुछ है। वह अपने लड़केकी अपेक्षा पिता अवश्य है, पिताकी अपेक्षा लड़का है, मामाकी अपेक्षा भानजा है। इसी प्रकार सब समझना चाहिए।

ऐसे ही ४ फुटका बेत छोटा है या बडा ? अगर ५-७ फुटका बेंत सामने हो तो इनसे छोटा है और २-३ फुटवाला बेंत होतो वह चार फुट वाला इससे बडा है। इस तरह ४ फुटका बेंत छोटा भी है और बड़ा भी है।

ठीक इसी तरह कोई पदार्थ किसी अपेक्षासे 'है' और किसी अपेक्षासे 'नहीं' है। दोनों धर्म एक साथ रहते हैं। इनमें अंधकार और प्रकाशके समान कोई विरोध नहीं है। एक पदार्थ में अनेक धर्म रहते हैं।

पदार्थके एक अंशको जानना नय अथवा एकान्त है और पदार्थके सब अंशोंको जानना प्रमाण अथवा अनेकान्त है। इसे ही उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं:—

अन्धे पाच खड़े इक ठौर, आगे गज इक आयो दौर।
एक एक अंग सबने गहा, सो सरधान जीव मे लहा॥
सूंडि पकरि गज मूशल होय, छाज कानने माने कोय।
माना थंभ पकरि गज अंग, पेट पकरि चौतरा अभंग॥
पूंछ पकरि लाठा सरदहा, पाचों ने गज भेद न लहा।
झगरै लरै करै बहु रार, समझावे सब देखनहार॥

—कविवर द्यानतराय

अथ यह है कि पांच अन्धोंने हाथीका एक २ अङ्ग पकड़ कर हाथीको मूसल, सूप, खम्भा, चबूतरा और लाठीके समान समझ लिया और आपसमे लड़ने लगे। इतनेमें आंख वाला एक आदमी आया और उनके आपसमें लड़ने झगड़नेका कारण समझ कर बोला कि सुनो, जिसने सूंड़ पकड़ी है, वह हाथीके कान पेट, पाव और पूंछ पकड़ कर देखे और जिसने कान

पकड़ा है वह सूंड, पेट, पॉंव और पूंछ पकड़े। उस तरह पाँचों ने जब पांचों अङ्ग पकड़ लिये तब उन्हें आपसमें झगड़नेका बड़ा दु:ख हुआ और फिर मालूम हुआ कि हम पांचों ठीक कहते थे लेकिन और चारोंकी भी बात ठीक थी, एक दूसरेकी बात न सुननेसे ही झगड़ा हुआ।

इसी प्रकार जैनसिद्धान्त पदार्थमें अनेक धर्मोंको मानता है। इसे ही स्याद्वाद कहते हैं।

इस स्याद्वाद सिद्धान्त पर संसारके समस्त निष्पक्ष विद्वान मोहित हैं।

नवहवां पाठ

व्रत

अच्छे कामोंके करनेका नियम करना अथवा बुरे कामोंका छोड़ना यह व्रत कहलाता है।

ये व्रत १२ होते हैं:—अणुव्रत ५, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४, इनको श्रावकके उत्तर गुणभी कहते हैं। इनका पालनेवाला श्रावक (व्रती) कहलाता है।

अणुव्रत।

हिंसा झूठ चोरी वगैरह पांच पापोंका स्थूल रीतिसे एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है।

१ श्रावक स्थूल रीतिसे पापोंका त्याग करते हैं, इस कारण उनके व्रत अणुव्रत कहलाते हैं; मुनि पूर्ण रीतिसे त्याग करते हैं, इसलिये उनके व्रत महाव्रत कहलाते हैं।

अणुव्रत ५ होते हैं:— १ अहिंसाणुव्रत, २ सत्याणुव्रत, ३

अचौर्याणुव्रत, ४ ब्रह्मचर्याणुव्रत, और ५ परिग्रहपरिमाणुव्रत।

१ प्रमादसे संकल्पपूर्वक (इरादा करके) त्रस जीवोंका घात नहीं करना अहिंसा अणुव्रत है। अहिंसाणुव्रती 'मैं इस जीव को मारूं' ऐसे संकल्पसे कभी किसी जीवका घात नहीं करता, न कभी किसी जीवको मारनेका विचार करता है और न वचन से किसीसे कहता है कि 'तुम इसे मारो।' घरद्वार बनाने, खेती व्यापार करने तथा शत्रुसे अपनेको बचानेमें जो हिंसा होती है उसका गृहस्थ त्यागी नहीं होता।

२ स्थूल (मोटा) झूठ न तो आप बोलना, न दूसरेसे बुलवाना और ऐसा सच भी नहीं बोलना जिसके बोलनेसे किसी जीवका अथवा धर्मका घात होता हो। भावार्थ-प्रमादसे जीवोंको पीड़ाकारक वचन नहीं बोलना सो सत्य अणुव्रत है।

३ लोभ वगैरह प्रमादके वशमें आकर बिना दिये हुए किसी की वस्तुको ग्रहण नहीं करना अचौर्य अणुव्रत है। अचौर्य अणु व्रतका धारी दूसरेकी चीजको न तो आप लेता है और न उठाकर दूसरेको देता है।

४ परस्त्रीसेवनका त्याग करना ब्रह्मचर्यअणुव्रत है। ब्रह्मचर्य अणुव्रतका धारी अपनी स्त्रीको छोड़कर अन्य सब स्त्रियोंको पुत्री और बहिनके समान समझता है। कभी किसीको बुरी निगाहसे नहीं देखता है।

५ अपनी इच्छानुसार धन, धान्य, हाथी, घोड़े, नौकर, चाकर, बर्तन वगैरह परिग्रहका परिमाण कर लेना कि मैं इतना रक्खूंगा, बाकी सबका त्याग कर देना, परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

गुणव्रत।

गुणव्रत उन्हें कहते हैं, जो अणुव्रतोंका उपकार करें।

गुणाव्रत तीन है—१ दिग्व्रत, २ देशव्रत ३ अनर्थदण्डव्रत।

१ लोभ आरम्भ वगैरहके त्यागके अभिप्रायसे पूर्व पश्चिम वगैरह चारों दिशाओंमे प्रसिद्ध नदी, गांव, नगर, पहाड़ वगैरह की हद बांध करके जन्मपर्यंत उस हदके बाहर न जानेका नियम करना दिग्व्रत कहलाता है। जैसे किसी आदमीने जन्मभर के लिये अपने आन जानकी मर्यादा उत्तरमे हिमालय दक्षिणमे कन्याकुमारी, पूर्वमे ब्रह्मदेश और पश्चिममे सिन्धु नदी तक कर ली, अब वह जन्मभर इस सीमाके बाहर नहीं जायेगा। वह दिग्व्रती है।

२ घड़ी, घन्टा, दिन महीना वगैरह नियत समय तक उस जन्म पर्यंतके किए हुए दिग्व्रतमे और भी सकोच करके किसी ग्राम, नगर, घर, मोहल्ला वगैरह तक आना जाना रख लेना और उससे बाहर न जाना देशव्रत है। जैसे जिस पुरुषने ऊपर लिखी सीमा नियत करके दिग्व्रत धारण किया है, वह यदि ऐसा नियम कर लेवे कि मैं भादोंके महिनेमे इस शहरके बाहर नहीं जाऊंगा अथवा आज इस मकानके बाहर नहीं जाऊंगा तो उसके देशव्रत समझना चाहिये।

३ बिना प्रयोजनही जिन कामोंमे पापका आरम्भ हो उन कामोंका त्याग करना, अनर्थदण्डव्रत है। इस व्रतका धारी न कभी किसीको वनस्पति छेदने, जमीन खोदने वगैरह पापके कामोंका उपदेश देता है, न किसीको विष (जहर) शस्त्र (हथियार) वगैरह हिंसाके उपकरणोंको मांग देता है, न कषाय उत्पन्न करने वाली कथायें सुनता है, न किसीका बुरा विचारता है, और न बे मतलब व्यर्थ जल बखेरता है। और न आग जलाता है। कुत्ता बिल्ली वगैरह जीवोंको भी जो मांस खाते हैं, नहीं पालता।

शिक्षाव्रत

शिक्षाव्रत उन्हें कहते हैं जिनसे मुनिव्रत पालन करनेकी शिक्षा मिले।

शिक्षाव्रत ४ हैं:—१ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ भोगोपभोगपरिमाण ४ अतिथिसंविभाग।

मन, वचन, काय और कृत कारित, अनुमोदना करके नियत समय तक पांचों पापोंका त्याग करना और सबसे राग-द्वेष छोड़कर, अपने शुद्ध आत्मामें लीन होना, सामायिक कहलाता है। सामायिक करनेवालेको प्रातःकाल और सायंकाल किसी उपद्रव रहित एकांत स्थानमें तथा घर धर्मशाला अथवा मन्दिर में आसन वगैरह ठीक करके सामायिक करना चाहिये और विचारना चाहिये कि जिस संसारमें मैं रहता हूं, अशरणरूप, अशुभरूप, अनित्य, दुःखमयी और पररूप है और मोक्ष उससे विपरीत है इत्यादि।

प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको समस्त आरम्भ छोड़ना और विषय कषाय तथा आहार पानीका १६ पहर तक त्याग करना, प्रोषधोपवास कहलाता है। प्रोषध एक वार भोजन करने अर्थात् एकाशनका नाम है। एकाशनके साथ उपवास करना प्रोषधोपवास कहलाता है। जैसे किसी पुरुषको अष्टमीका प्रोषधोपवास करना है, तो उसे सप्तमी और नवमीको एकाशन और अष्टमीको उपवास करना चाहिये और शृंगार, आरम्भ, गन्ध, पुष्प (तेल इतर, फुलेल), स्नान, अंजन सूंघनो वगैरह चीजोंका त्याग करना चाहिये। यह उत्कृष्ट प्रोषधोपवास की रीति है। व्रती प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशीको कमसे कम एकभुक्त करके भी धर्मध्यान कर सकता है।

भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि भोगोपभोग वस्तुओंको

जन्मपर्यन्त अथवा कुछ कालकी मर्यादा लेकर त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत है। जो पदार्थ अभक्ष्य है अथवा ग्रहण करने योग्य नहीं हैं उनका तो सर्वथा जन्मपर्यन्तके लिये त्याग करना चाहिए और जो भक्ष्य तथा ग्रहण करने योग्य हैं, उनका भी त्याग घड़ी, घन्टा, दिन, महिना वर्ष वगैरह कालकी मर्यादा लेकर करना चाहिये।

भक्ति सहित, फलकी इच्छाके बिना, धमार्थ मुनि वगैरह श्रेष्ठ पुरुषों को दान देना, अतिथिसंविभागव्रत है। दान चार प्रकारका है:—१ आहारदान, २ ज्ञानदान, ३ औषधदान, ४ अभयदान।

१ मुनि, त्यागी, श्रावक, व्रती तथा भूखे, अनाथ विधवाओंको भोजन देना आहारदान है।

२ पुस्तकें बांटना; पाठशालायें खोलना, व्याख्यान देकर धर्म और कर्तव्य का ज्ञान कराना ज्ञानदान है।

३ रोगी मनुष्योंको औषध देना, उनको चर्या करना औषधदान है।

४ जीवोंकी रक्षा करना अथवा मुनि त्यागी और ब्रह्मचारी लोगोंके रहनेके लिए स्थान बनवाना, अन्धेरी रातमें सड़कों पर लैंप जलवाना, चौकी पहरा लगवाना, धर्मात्मा पुरुषोंको दुःख और संकटसे निकालना अभयदान है।

चौदवां पाठ

तत्त्व और पदार्थ

तत्त्व सात होते हैं:—१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बंध ५ संवर, ६ निर्जरा, ७ मोक्ष।

जीव

जीव उसे कहते है जो जीवे, जिसमें चेतना हो अथवा जिसमें प्राण हों। पांच इन्द्रिय, तीन बल (मनबल, वचनबल, कायबल) आयु और श्वासोछ्वास। ये दस द्रव्यप्राण तथा ज्ञान दर्शन ये भावप्राण है। जिसमे ये पाये जाते है वे जीव कहलाते हैं। जैसे मनुष्य, देव, पशु, पक्षी वगैरह।

अजीव

अजीव उसे कहते हैं जिसमे चेतना गुण न हो अथवा जिसमें कोई प्राण न हो। जैसे लकड़ी पत्थर वगैरह।

आस्रव

आस्रव बंधके कारण को कहते है। इसके दो भेद हैं:—१ भावास्रव, २ द्रव्यास्रव। जैसे किसी नावमे कोई छेद हो जाय और उसमेंसे उस नावमें पानी आने लगे इसी प्रकार आत्माके जिन भावोंसे कर्म आते हैं उन्हें भावास्रव कहते हैं और शुभ अशुभ पुद्गलके परमाणुओंको द्रव्यास्रव कहते हैं।

आस्रवके मुख्य चार भेदहैं:—१ मिथ्यात्व, २ अविरति, ३ कषाय, ४ योग उन्हीं चार खास कारणोंसे कर्मोंका आस्रव होता है।

१ मिथ्यात्व—संसारकी सब वस्तुओंसे जो अपनी आत्मासे अलग हैं राग और द्वेषको छोड़कर केवल अपनी शुद्ध आत्माके अनुभवमें निश्चय करनेको सम्यक्त्व कहते हैं। यही आत्माका असली भाव है, इससे उल्टे भावको मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्वको वजहसे संसारी जीवमें तरह तरहके भाव पैदा होते हैं और इसीसे मिथ्यात्व कर्मबन्धका कारण है। इसके पांच भेद हैं:—१ एकांत, २ विपरीत, ३ विनय, ४ संशय, ५ अज्ञान।

२ अविरति—आत्माके अपने स्वभावसे हटकर और और विषयोंमें लगाना अविरति है। छह कायके जीवोंकी हिंसा करना और पांच इन्द्रिय और मनको वशमें करना अविरति है।

३ कषाय—जो आत्माको कषे अर्थात् दुःख दे, वह कषाय है इसके २५ भेद हैं:—अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

४ योग—मनमें कुछ सोचनेसे या जिह्वासे कुछ बोलनेसे या शरीरसे कोई काम करनेसे हमारे मन जिह्वा और शरीरमें हलन चलन होता है और इनके हिलनेसे हमारी आत्मा भी हिलती है। यही योग कहलाता है। आत्मामें हलन चलन होनेसे ही कर्मोंका आस्रव होता है। योगके १५ भेद हैं—१ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ उभयमनोयोग, ४ अनुभयमनोयोग, ५ सत्यवचनयोग, ६ असत्यवचनयोग, ७ उभयवचनयोग, ८ अनुभयवचनयोग, ९ औदारिककाययोग, १० औदारिकमिश्रकाययोग, ११ वैक्रियिककाययोग, १२ वैक्रियिकमिश्रकाययोग, १३ आहारककाययोग, १४ आहारकमिश्रकाययोग, १५ कार्माणयोग।

इस प्रकार ५ मिथ्यात्व १२ अविरति, २५ कषाय १५ योग कुल मिलाकर आस्रवके ५७ भेद हैं।

बन्ध।

बंधके भी दो भेद हैं—१ भावबन्ध, २ द्रव्यबन्ध। आत्माके जिन बुरे भावोंसे कर्मबन्ध होता है, उसको तो भाव बन्ध कहते हैं और उन विकार भावोंके कारण जो कर्मके पुद्गल परमाणु आत्माके प्रदेशोंके साथ दूध और पानीके समान एकमेक होकर मिल जाते हैं, उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं। मिथ्यात्व अविरति आदि

परिणामों के कारण कर्म आते हैं। और वे आत्माके प्रदेशों के साथ मिल जाते हैं। जैसे धूल उड़कर गीले कपड़ेमें लग जाती है।

बन्ध और आस्रव साथ साथ एक ही समयमें होता है तथापि इनमें कार्य-कारण भाव है इसलिए जितने आस्रव हैं उन सबको बन्धके कारण समझना चाहिए।

संवर।

आस्रवका न होना अथवा आस्रवका रोकना, अर्थात् नष्ट कर्मोंका नहीं आने देना, संवर है।

जैसे जिस नावमें छेद हो जानेसे पानी आने लगा था अगर उस नावके छेद बन्द कर दिये जाँय तो उसमें पानी आना बन्द हो जायगा, इसी प्रकार जिन परिमाणोंसे कर्म आते हैं, वे न होने पावें और उनकी जगहमें उनसे उल्टे परिणाम हों, तो कर्मोंका आना बन्द हो जायेगा। यह संवर है। इसके भी भाव-संवर और द्रव्यसंवर दो भेद हैं। जिन परिणामोंसे आस्रव नहीं होता है, वे भावसंवर कहलाते हैं और उनसे जो पुद्गल परमाणु कर्मरूप होकर आत्मासे नहीं मिलते हैं, उसको द्रव्य-संवर कहते हैं।

यह संवर ३ गुप्ति, ५ समिति, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा २२ परीषहजय और ५ चारित्रसे होता है अर्थात् संवरके गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र ये ५ मुख्य भेद हैं।

गुप्ति—मन, वचन और कायसे हलन चलनका रोकना, ये तीन गुप्ति हैं।

समिति—ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग ये पांच समिति हैं।

धर्म—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम,

तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं।

अनुप्रेक्षा—बार बार चिंतवन करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म ये १२ अनुप्रेक्षा हैं। इनको १२ भावना भी कहते हैं।

१ अनित्यभावना—ऐसे विचार करना कि संसारकी तमाम चीजें नाश हो जाने वाली हैं, कोई भी नित्य नहीं है।

२ अशरणभावना—ऐसा विचार करना कि जगतमे कोई शरण नहीं है और मरणसे कोई बचाने वाला नहीं है।

३ संसारभावना—ऐसा चिंतवन करना कि यह संसार असार है, इसमें जराभी सुख नहीं है।

४ एकत्वभावना—ऐसा विचार करना कि अपने अच्छे बुरे कर्मोंके फलको यह जीव अकेला ही भोगता है, कोई सगा साथी नहीं बटा सकता।

५ अन्यत्वभावना—ऐसा विचार करना कि पुत्र स्त्री वगैरह संसारकी कोई भी वस्तु अपनी नहीं है।

६ अशुचिभावना—ऐसा विचार करना कि यह देह अपवित्र और घिनावनी है, इससे कैसे प्रीति करना चाहिए?

७ आस्रवभावना—ऐसा चिंतवन करना कि मन, वचन, कायके हलन चलनसे कर्मोंका आस्रव होता है सो बहुत दुखदाई है, इससे बचना चाहिए।

संवरभावना—ऐसा विचार करना कि संवरसे यह जीव संसार-समुद्रसे पार हो सकता है, इसलिये संवरके कारणोंको ग्रहण करना चाहिए।

९ निर्जराभावना—ऐसा विचार करना कि कर्मोंका कुछ दूर होना निर्जरा है, इसलिये इसके कारणोंको जानकर कर्मोंको दूर

३. मदिरापान—गांजा, भांग, दारू, अफीम और चरस वगैरह मादक पदार्थोंका खाना मदिरापान कहलाता है। मदिरा पान करने वालोंका धर्म-कर्म सब नष्ट हो जाता है।

मदिरा पी मत्ता मलिन, लोटे बीच बजार।
मुखमे मूतै कूकरा, चाटै बिना विचार॥ (बुधजन)

मदिरामें अनन्त प्राणी सड़ कर पैदा होते हैं। इसमें घोर हिंसा है। हिंसासे पाप और पापसे दुःख होता है।

संन्यासी संन्यास तज, करता मदिरा-पान।
चण्डालोंके हाथसे, खो बैठा निज प्राण॥

४. शिकार खेलना—जंगलमें सिंह, बाघ और हरिण वगैरह स्वतन्त्र फिरनेवाले जीवों अथवा आकाशमें उड़नेवाले पक्षियों या किसी भी जीवको बन्दूक वगैरहसे मारना शिकार खेलना कहलाता है।

जैसे अपने प्रान हैं, तैसे परके जान।
कैसे हरते दुष्ट जन, बिना बैर पर-प्रान॥ (बुधजन)

जो लोग अपनी जानके समान दूसरोंकी जान नहीं समझते वे महान पापी हैं।

भैरवने मारा हिरण, शूकर पर शर तान।
बाल बाल सूकर बचा, ली भैरवकी जान॥

५. वेश्या गमन—वेश्यासे रमण करनेकी इच्छा करना, उसके घर जाना या उससे सम्बन्ध रखना वेश्यागमन कहलाता है।

द्विज खत्री कोली बनिक, गनिका चाखत लाल।
ताकौं सेवत मूढजन, मानव जनम-निहाल॥ (बुधजन)

वेश्या प्रत्येककी लार चाटती रहती है, उसे चाटकर मूर्ख

अपनेको धन्य समझते है, खेद है। वेश्यायें तो केवल पैसेसे प्रेम करती है। पैसा न रहने पर वे पास नहीं फटकतीं।

चारुदत्तकी चतुरता, मेनाने* को नष्ट।
सारा पैसा हडपकर, दिये बहुतसे कष्ट॥

६. चोरी—किसीकी गिरी, भूली, अथवा रखी हुई चीजको ले लेना या लेकर दूसरोंको दे देना चोरी कहलाती है। जिसकी चोरी होती है उसका मन बहुत दुःखी होता है। धन प्राणोंसे भी प्यारा होता है, इसलिये धन हरने वालेको प्राण हरनेका पाप लगता है।

बहु उद्यम धन मिलनका, निज-परका हितकार।
सो तजि क्यों चोरी करै, तामे विघन अपार॥

चोरको लोग बुरी दृष्टिसे देखते हैं। चोरीका धन पासमें नहीं रहता। इससे बढ़कर कोई पाप नहीं है।

ढोंगी साधु बना हुआ, परधन हरन प्रवीन।
राज दण्डको भोगकर, पाई दुर्गति दीन॥

७. परस्त्रीसेवन—धर्मानुकूल अपनी विवाहित स्त्रीके सिवाय दूसरी स्त्रियोंके साथ विषयसेवन करना, परस्त्रीसेवन कहलाता है। विवाहित स्त्रीके सिवाय सब लड़की, बहिन और माताके समान है। इसलिए परस्त्री-सेवन करनेवालेको लड़की, बहिन और माताके साथ विषय-सेवन करनेका पाप लगता है। इससे लोकनिन्दा होती है इसे दिन-रात बिल्लीकी तरह घात लगाई रहनी पड़ती है।

---

*बसन्ततिलका वेश्याकी लड़की "बसन्तसेना"।

ना मैई नाहीं छुई, रावन पाई घात ।
चली जात निन्दा अजौं, जगमें भई विख्यात ।। (बुधजन)

इसलिये बालको ! ये व्यसन बड़े दुखदाई हैं । व्यसनका मतलबही दुःखदाई है । इनसे सदा डरते रहो ।

प्रथम पाण्डवा भूप, खेलि जुआ सब खोयो ।
मांस खाय बकराय, पाय विपदा बहु रोयो ।।
बिन जानैं मदपान, योग यादौगन दज्झै ।
चारुदत्त दुख सह्यो वेसवा-विसन अरुज्झै ।।
नृप ब्रह्मदत्तआखेटसों, द्विज शिवभूति अदत्तरति ।
पर- रमनि राचि रावन गयो, सातौं सेवत कौन गति ? ।।

प्रश्न

१. व्यसन किसे कहते हैं ?
२. व्यसन कितने होते हैं, नाम बताओ ।
३. व्यसनोंके लक्षण बताओ ।
४. व्यसनोंमें प्रसिद्ध होने वालोंकी कहानियाँ सुनाओ ।
५. व्यसन सेवन करने वालोंको कौन-कौन पापका बन्ध होता है और क्यों ? समझाओ ।

सातवां पाठ

कषाय और लेश्या

कषाय—जो आत्माके शुभ भावोंको कषै अर्थात् घाते उसे कषाय कहते हैं । ये चार होती हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ । क्रोध—गुस्सा करना, मान—धन, शरीर, ज्ञान, कुल,

जाति, पूजा, ऋद्धि और तपका घमंड करना, माया—छल-कपट करना, लोभ लालच करना।

लेश्या—इन चारों कषायोंके उदयसे रंगे हुये मन, वचन और कायकी प्रवृत्ति अर्थात् क्रियाको लेश्या कहते हैं। यह भावलेश्या है और शरीरके रंगको द्रव्यलेश्या कहते हैं।

लेश्याके छह भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

इनका उदाहरण देकर बताते हैं:—

एक दिन छह लकड़हारे जंगलमें लकड़ी लेने गये थे। उनमें सबके भाव अलग-अलग थे। एक पके आमके पेड़को देखकर उनके इस प्रकार भाव हुये—

कृष्णलेश्यावालेने कहा कि 'यदि हम लोग पेड़को जड़से काट डाले तो आम खानेको मिलेंगे''।

नीललेश्यावालेने कहा कि "यदि बड़ी डाली काटी जावे तो ठीक होगा"।

कपोतलेश्यावालेने 'छोटी डाली काटना ठीक समझा"। पीतलेश्यावालेने चाहा कि "केवल सब फलतोड़लिये जावें"। पद्मलेश्यावालेने विचारा कि "यदि पके फल ही तोड़े जावें तो ठीक है"। और शुक्ललेश्यावालेने कहा कि "पृथ्वीपर पड़े हुये पके फल लेलेना चाहिए"। इसप्रकार छह लकड़हारोंके छह प्रकारसे परिणाम (भाव) हुए।

व्यवहारमें किस लेश्यावालेकी क्या पहिचान है इसका वर्णन करते हैं।

कृष्णलेश्यावाला बड़ा क्रोधी, बैर रखनेवाला, गाली बकने वाला, धर्म और दयासे रहित और वह किसीके वशमें नहीं रहता। ऐसा तीव्र क्रोध, मान, माया और लोभ करनेवाला कृष्णलेश्यावाला है।

जो मन्द-बुद्धिवाला, अज्ञानी, मानी, माया करनेवाला कपटी, आलसी, निद्रालु, और परिग्रही हो उसे नीललेश्यावाला समझना चाहिए।

रूठना, निन्दा करना, दोष लगाना, शोक करने वाला, डरने वाला चुगली करने वाला दूसरेकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करनेवाला दूसरेका विश्वास न करने वाला—अपने समान दूसरेको अविश्वासी समझनेवाला लाभ-हानि न समझनेवाला और दूसरेका यश न समझनेवाला कपोतलेश्यावाला समझना चाहिए।

हित अहित जाननेवाला, सबको अपने समान समझने-वाला, दान करनेवाला, दयावान और कोमल परिणामवाला नम्र पुरुष पीतलेश्यावाला समझना चाहिए।

त्यागी, सरल-परिणामी, उत्तम पात्रोंको दान करनेवाला, क्षमा करने वाला, साधुओं और गुरुओंकी पूजा करने वाला, पद्मलेश्यावाला जानना चाहिए।

पक्षपात न करनेवाला, सबको समान समझने वाला, संसा-रके सुखोंकी इच्छा न रखनेवाला, और राग द्वेष न करनेवाला पवित्रात्मा शुक्ललेश्यावाला है।

कृष्ण[1] वृक्ष काटन चहै, नील[2] जु काटन डाल।
लघु डाली कापोत[3] अरु, पीत[4] सर्व फल माल॥
पद्म[5] चहै फल पक्वको, तोड़ खाऊं सार।
शुक्ल[6] चहै धरनी गिरे, लूं पक्के निरधार॥

प्रश्न

१. कषाय किसे कहते हैं और वे कितनी होती हैं ?
२. लेश्या किसे कहते हैं ? उसके मुख्य भेद कितने हैं ?
३. छहों लेश्याओंका संक्षेपमें लक्षण कहो।
४. सबसे अच्छी और सबसे बुरी लेश्या कौनसी है ?
५. किसके कौनसी लेश्या है ? दो उदाहरण दो।

आठवां पाठ

देवस्तवन*

(अनुवादक पं० नाथूरामजी प्रेमी)

शक्र—सरीखे शक्तिवानने, तजा गर्व गुण गानेका।
किन्तु न मैं साहस छोड़ूंगा, विरदावली+बनानेका॥
अपने अल्पज्ञानसे ही मैं, बहुत विषय प्रकटाऊंगा।
इस छोटे वातायन×से ही सारा, नगर दिखाऊंगा॥१॥
तुम सर्वदर्शी देव, किन्तु तुमको न देख सकता कोई।

---

*धनञ्जयकविकृत विषापहारस्तोत्रके पद्योंका अनुवाद।
—इन्द्र। +स्तोत्र। ×खिड़की।

तुम सबके हो ज्ञाता, पर तुमको न जान पाता कोई ॥
'कितने हो ?' 'कैसे हो' यों कुछ कहा न जाता हे भगवान।
इससे निज अशक्ति बतलाना, यही तुम्हारा स्तवन महान ॥

बालक सम अपने दोषोंसे जो जन पीड़ित रहते है।
उन सबको हे नाथ! आप भवताप-रहित नित करते है ॥
यों अपने हित और अहितका, जो न ध्यान धरनेवाले।
उन सबको तुम बाल-वैद्य हो, स्वास्थ्य-दान करनेवाले ॥ ३ ॥

भक्तिभावसे सुमुख आपके रहने वाले सुख पाते।
और विमुखजन दुख पाते है, रागद्वेष नहिं तुम लाते ॥
अमल सुदुतिमय- चारु-आरसी,+सदा एकसी रहती ज्यों।
उसमें सुमुख विमुख दोनोंही देखें छाया ज्यों-की-त्यों ॥ ४ ॥

प्रभुकी सेवा करके सुरपति ÷बीज स्वसुखके बोता है।
हे अगम्य! अज्ञेय! न इससे, तुम्हें लाभ कुछ होता है ॥
जैसे छत्र सूर्यके सम्मुख, करनेसे दयालु जिनदेव।
करनेवाले हो को होता, सुखकर आतपहर स्वयमेव ॥ ५ ॥

धनिकोंको तो सभी निधन लखते है, भला समझते है।
पर निधनोंको तुम सिवाय जिन, कोई भला न कहते है ॥
जैसे अन्धकारवासी उजियालेवालेको देखे।
वैसे उजियालावाला नर, नहि तमवासीको देखे ॥६॥

बिन जाने भी तुम्हें नमन करनेसे जो फल फलता है।
वह औरोंको देव मान, नमनेसे भी नहिं मिलता है ॥७॥

जो-इस जगके पार गये, पर पाया न जाय जिनका पार।
ऐसे जिनपतिके चरणोंकी, लेता हूँ मैं शरण उदार ॥८॥

+कान्तिमान् सुन्दर दर्पण। ÷इन्द्र।

प्रश्न

१. भगवानके गुणोंका वर्णन करो।

२. निर्मलदर्पणका उदाहरण देनेका क्या अर्थ है ?

३. भगवान तरन-तारन क्यों है।

नववां पाठ

पांच मंगल

बालको ! तुम्हें मालूम है जिन-मन्दिरोंमें तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें विराजमान रहतीं है। उनका पूजन प्रतिदिन करना चाहिए। पूजनसे पहिले श्रीभगवान्का अभिषेक होता है। यह क्यों ?

बात यह है कि आजकल तीर्थंकरोंके न होनेके कारण उनकी मूर्तियोंके द्वारा उनकी पूजा ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसी उनकी की गई थी। इसलिये उनके आकारकी प्रतिमायें बनवाकर और उनकी शास्त्रानुसार प्रतिष्ठा कराई जाती है। उस समय बड़ाभारी उत्सव मनाया जाता है। इसे ही कल्याणक कहते हैं। उसी कल्याणकका यहभी एक छोटा रूप है। इसके पाँच अङ्ग है—गर्भ, जन्म, तप (दीक्षा), ज्ञान और निर्वाण।

इनका नीचे संक्षेपसे वर्णन करते हैं :—

१. गर्भ—श्रीभगवानके गर्भमें आनेके छह महीना पहिले ही स्वर्गसे इन्द्र, कुबेरको भेजता है। कुबेर आकर सुन्दर नगर बनाता है। उसमें अतिशय सुन्दर और रत्नमयी मन्दिर वन और उपवन बनाता है उसी समयसे भगवानके माता-पिताके घरपर

रत्नोंकी वर्षा, फूलोंकी वर्षा, गंधोदककी वर्षा दुंदुभिबाजोंका बजना और जय-जयकारका शब्द होने लगता है। इन्हें पञ्च-आश्चर्य कहते हैं। इसी प्रकार छह महीने तक पञ्चआश्चर्य होते रहते हैं और देवियाँ आकर माताकी सेवा करती रहती हैं एक दिन माताको रातके पिछले पहरमें सोलह स्वप्न आते हैं। उनका फल स्वामी (पति) से यह जानकर कि तीन लोकका स्वामी तीर्थङ्कर पुत्र होगा' बड़ी प्रसन्नता होती है।

२. जन्म—भगवान्का जन्म होते ही साथमें उनको मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते हैं। जन्मके समय तीनों लोकमें आनन्द होता है। इन्द्रका आसन कंपित हो जाता है और उसे अवधिज्ञानसे भगवान्के जन्मका पता लग जाता है। तब इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठकर कुटुम्ब सहित आता है और जय-जयकारका शब्द करता हुआ नगरकी तीन प्रदक्षिणा करता है। इन्द्राणी प्रसूतिगृहमे जाकर भगवान्की माताको मायामयी निद्रामे सुला देती है और मायामयी बालक सुला कर भगवानको ले आती है। सौधर्म इन्द्र भगवानको प्रणाम कर गोदमे लेता है, ईशान इन्द्र छत्र लगाता है सनत्कुमार और महेन्द्र दोनों ओर चमर ढोरते हैं और सब इन्द्र जय-जय शब्द बोलते हैं। इस प्रकार चारों प्रकारके देव बहुत प्रसन्न होकर भगवानको ऐरावत हाथीपर विराजमान कर मेरु पर्वतपर लेजाते हैं। वहाँ पांडुकशिलापर रत्नमयी सिंहासनपर विराजमान करते हैं। उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं। इन्द्राणी मङ्गल गीत गाती है, देवांगनाएं नृत्य करती हैं देव क्षीरसमुद्रसे कलश भर-भर लाते हैं और सौधर्म तथा ईशानइन्द्र भगवानका अभिषेक करते हैं। बादमें भगवानको वस्त्राभूषण पहनाकर

प्रश्न

१. भगवानके गुणोंका वर्णन करो।

२. निर्मलदर्पणका उदाहरण देनेका क्या अर्थ है ?

३. भगवान तरन-तारन क्यों है ?

नववां पाठ

पांच मंगल

बालको ! तुम्हें मालूम है जिन-मन्दिरोंमें तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें विराजमान रहती है। उनका पूजन प्रतिदिन करना चाहिए। पूजनसे पहिले श्रीभगवानका अभिषेक होता है। यह क्यों ?

बात यह है कि आजकल तीर्थंकरोंके न होनेके कारण उनकी मूर्तियोंके द्वारा उनकी पूजा ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसी उनकी की गई थी। इसलिये उनके आकारकी प्रतिमायें बनवाकर और उनकी शास्त्रानुसार प्रतिष्ठा कराई जाती है। उस समय बड़ाभारी उत्सव मनाया जाता है। इसे ही कल्याणक कहते हैं। उसी कल्याणकका यहभी एक छोटा रूप है। इसके पाँच अङ्ग है—गर्भ, जन्म, तप (दीक्षा), ज्ञान और निर्वाण।

इनका नीचे संक्षेपसे वर्णन करते हैं :—

१. गर्भ—श्रीभगवानके गर्भमें आनेके छह महीना पहिले ही स्वर्गसे इन्द्र, कुवेरको भेजता है। कुवेर आकर सुन्दर नगर बनाता है। उसमे अतिशय सुन्दर और रत्नमयी मन्दिर वन और उपवन बनाता है उसी समयसे भगवानके माता-पिताके घरपर

रत्नोंकी वर्षा, फूलोंकी वर्षा, गंधोदककी वर्षा दुंदुभिबाजोंका बजना और जय-जयकारका शब्द होने लगता है। इन्हें पञ्च-आश्चर्य कहते है। इसी प्रकार छह महीने तक पञ्चआश्चय होते रहते हैं और देवियाँ आकर माताकी सेवा करती रहती है एक दिन माताको रातके पिछले पहरमे सोलह स्वप्न आते हैं। उनका फल स्वामी (पति) से यह जानकर कि तीन लोकका स्वामी तीर्थंङ्कर पुत्र होगा' बड़ी प्रसन्नता होती है।

२. जन्म—भगवान्का जन्म होते ही साथमे उनको मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते है। जन्मके समय तीनों लोकमें आनन्द होता है। इन्द्रका आसन कंपित हो जाता है और उसे अवधिज्ञानसे भगवानके जन्मका पता लग जाता है। तब इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठकर कुटुम्ब सहित आता है और जय-जयकारका शब्द करता हुआ नगरकी तीन प्रदक्षिणा करता है। इन्द्राणी प्रसूतिगृहमे जाकर भगवान्की माताको मायामयी निद्रामे सुला देती है और मायामयी बालक सुला कर भगवानको ले आती है। सौधर्म इन्द्र भगवानको प्रणाम कर गोदमे लेता है, ईशान इन्द्र छत्र लगाता है सनत्कुमार और महेन्द्र दोनों ओर चमर ढोरते है और सब इन्द्र जय-जय शब्द बोलते हैं। इस प्रकार चारों प्रकारके देव बहुत प्रसन्न होकर भगवानको ऐरावत हाथीपर विराजमान कर मेरु पर्वतपर लेजाते है। वहाँ पांडुकशिलापर रत्नमयी सिंहासनपर विराजमान करते हैं। उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं। इन्द्राणी मङ्गल गीत गाती हैं, देवांगनाएं नृत्य करती हैं देव क्षीरसमुद्रसे कलश भर-भर लाते हैं और सौधर्म तथा ईशानइन्द्र भगवानका अभिषेक करते हैं। बादमें भगवानको वस्त्राभूषण पहनाकर

उत्सव मनाते हुये वापिस होते हैं। इन्द्र भगवान्को माताकी गोद में देकर कुवेरको उनकी सेवाके लिये छोड़कर अपने स्थानपर चला जाता है।

३. तप—बादमें भगवान बाललीला करते हैं। देव भी भगवान जैसा रूप धारण कर उनके साथ खेलते हैं। भगवान् को पसीना नहीं आता, उनके शरीरमे किसी प्रकारका मल नहीं होता उनका खून सफेद होता है, शरीर सुगन्धित और अनेक शुभलक्षणोंसे युक्त होता है। इस प्रकार सुख भोगकर भगवान को संसारकी दशासे वैराग्य पैदा हो जाता है। उस समय संसारके स्वरूपका चिन्तवन करते है, बारह भावनायें भाते हैं। तब लौकान्तिक देव आकर भगवान के वैराग्य की प्रशंसा करते है। फिर इन्द्र आकर रत्नमयी पालकीमे भगवानको विराजमान कर नन्दनवनमे ले जाता है। वहां भगवान् वस्त्राभूषणोंका त्याग कर पच महाव्रत धारण करते है, केश लोंच करते हैं। इन्द्र केशलोंचके बालोंको रत्नमयी पिटारमें रखकर क्षीर समुद्रमे सिरा आता है और स्वर्ग चला जाता है।

भगवान्को तपके प्रभावसे आठ ऋद्धियां प्राप्त होती है और केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है।

४. ज्ञान—भगवानको केवलज्ञान होते ही कुवेर समवशरणकी रचना करता है। उसमें बारह सभायें होती है। जीव उनमें बैठकर भगवान का उपदेश सुनते हैं। भगवान गन्धकुटीमें विराजते है। कुवेर रत्नमयी सिंहासनपर सोनेका कमल बनाता है। उससे चार अंगुल ऊपर—अधर (आकाशमे) रहते हैं। देव चमर ढोरते है। कल्पवृक्षोंके फूलोंकी भगवान पर वर्षा होती है

देव दुन्दभि बाजा बजाते हैं, उससे आकाश गूंजता है। भगवानके शरीरका तेज सूर्यमण्डलके तेजसे अधिक रहता है। केवलज्ञानके समय भगवानकी विभूति अनुपम होती है। भगवानके प्रभावसे सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं होता। परस्पर वैर रखनेवाले जीव एक दूसरेको कोई कष्ट नहीं देते। भगवान् पर कोई उपसर्ग नहीं होता। आंखोंकी पलकें नहीं झपकतीं। नख और केश नहीं बढ़ते, स्फटिकमणिके समान उनका शरीर निर्मल होताहै।

भगवानका उपदेश अर्धमागधी भाषामें होता है। उसे सब प्राणी अपनी २ भाषामें समझ लेते हैं। परस्परमे विरोध रखने वाले मृग सिंह, सर्प नकुल (नेवला) आदि वैर छोड़कर प्रेमसे व्यवहार करते हैं। भगवानकी विहार-भूमिमें सब ऋतुओंके फल फूल फलते हैं। कॉचके समान पृथ्वी निर्मल हो जाती है। पवनकुमार देव एक २ योजनकी भूमि साफ करते रहते हैं। स्वर्गके देव भगवानके चरणोंके नीचे कमलकी रचना करते जाते हैं। सब दिशायें निर्मल हो जाती हैं। देवता भगवानके जय-जय कारके शब्दोंका उच्चारण करते जाते है। भगवानके आगे धर्मचक्र रहता है। केवलज्ञान होने पर देवोंके द्वारा किये गये ये चौदह अतिशय होते हैं। भगवान, जन्म, मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित होते हैं और नौ केवल लब्धियोंको धारण करते हैं।

५. निर्वाण—केवलज्ञानद्वारा पदार्थोंके स्वरूपको जिस प्रकार जानते हैं उसी प्रकारका उपदेश करते हैं। भगवानके उपदेशसे सर्वजीव रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गमे लीन हो जाते है। पश्चात् शुक्लध्यानपूर्वक संयोग केवलीसे अयोगकेवली

होकर और चौदहवें गुणस्थानकी प्रकृतियोंका नाश कर अविनाशीपद प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान लोकके अग्रभागमें स्थित रहते हैं क्योंकि उसके आगे धर्म द्रव्य नहीं है। उनका आकार अन्तिम शरीरसे कुछ कम रहता है। भगवानमें ज्ञानावरणादि कर्मोंके अभावसे ज्ञान आदि आठ गुण व्यवहार नयसे और निश्चयनयसे अनन्तगुण विद्यमान रहते हैं। यहां आत्माका शुद्धस्वरूप प्रकट हो जाता है। यही सुखकी अन्तिम सीमा है।

भगवानके निर्वाणके पीछे शरीरके परमाणु खिर जाते हैं, नख और केश रह जाते हैं। देव भगवानका मायामयी शरीर बना कर सुगंधित चन्दनकी चितापर रखते हैं और अग्निकुमार देवोंके मुकुटसे अग्नि प्रकट होती है उससे अग्नि-संस्कार होता है।

इसप्रकार भगवानके निर्वाण कल्याणककी महिमाका वर्णन कर भव्य सुखसम्पत्ति प्राप्त करते हैं।

प्रश्न

१. कल्याणक किसे कहते हैं और वे कितने होते हैं?

२. प्रत्येक कल्याणकका भावार्थ बतलाओ?

३. भगवानके कल्याणकोंके जो अतिशय—विशेषताएं होती हैं उनका वर्णन करो।

४. भगवानके समवशरणमें कौन कौन आते हैं और उनका उपदेश किस भाषामें होता है?

५. निर्वाणके बाद अग्निसंस्कार कैसे किया जाता है?

दसवां पाठ

दर्शनस्तुति

[कविवर भूधरदासकृत]

पुलकंत१ नयन-चकोर-पक्षी, हँसत उर२-इन्दीवरो ।
दुर्बुद्धि-चकवी विलख विछुड़ी निबिड़ मिथ्या-तम हरो ॥
आनन्द अम्बुधि३ उमगि उछरयो अखिल आतप४ निरदले ।
जिनवदन५पूरनचन्द्र निरखत सकल मन वांछित फले ॥१॥

मम आज आतम भयो पावन६ आज विघन विनाशिया ।
संसार-सागर-नीर निबड़यो७, अखिल तत्त्व प्रकाशिया ॥
अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये ।
दुख जरयो दुर्गतिवास निवरयो, आज नवमंगल भये ॥२॥

मन-हरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये ?
मम सकल तनके रोम हुलसे, हर्ष और न पाइये ॥
कल्याण-कार प्रतच्छ प्रभुको, लखैं जे सुर नर घने ।
तिह समयकी आनन्द महिमा, कहत क्यों मुखसे बने ॥३॥

भर नयन निरखे नाथ तुमको, और वांछा ना रही ।
मम सब मनोरथ भये पूरन, रङ्क मानों निधि लही ॥
अब होउ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिए ।
कर जोर "भूधरदास" विनवै, यही वर मोहि दीजिये ॥४॥

---

१ प्रसन्न, २ हृदयरूपी कमल । ३ आनन्दरूपी सागर । ४ नष्टहुए । ५ जिनेन्द्रभगवानका मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा । ६ पवित्र । ७ अन्त होना ।

प्रश्न

१. भगवानके दर्शनसे क्या लाभ होता है ?
२ भगवानकी भक्तिसे तुम क्या चाहते हो ?
३. स्तुतिका सार समझाओ।

ग्यारहवां पाठ

रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र ये तीन रत्न हैं। ये ही रत्नत्रय कहलाते हैं। ये आत्माके गुण हैं।

इसके दो भेद हैं— निश्चय और व्यवहार।

आत्माके स्वरूपका श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। आत्माके स्वरूपका निश्चय होना सम्यग्ज्ञान और आत्माके स्वरूपमें लीन होना निश्चय सम्यक्‌चारित्र है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

सच्चा देव, सच्चा शास्त्र, सच्चा गुरु और दयामयी धर्म का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

जन्म मरण आदि अठारह दोषोंसे रहित सच्चादेव होता है। अरहन्तदेवके द्वारा दिये गये उपदेशोंको याद रखकर गणधर देव द्वादशांगकी रचना करते हैं और उन्हींके आधार पर आचार्य अन्य शास्त्रोंकी रचना करते हैं वे सब सच्चा शास्त्र है।

जो संसारके विषयकषायोंसे दूर रहे और ज्ञानध्यानमें लीन रहे उसे गुरु कहते हैं।

अरहन्त देवका कहा हुआ और आत्माका कल्याण करने वाला अहिंसा स्वरूप धर्म्म है।

सम्यग्दर्शनके समान संसारमें कोई सम्पत्ति नहीं है। इसे सब कोई धारण कर सकता है। चांडाल भी सम्यग्दर्शन धारण कर पूज्य बन जाते है। इससे कुत्ताभी देव हो जाता है। आत्मा के कल्याणके लिये सम्यग्दर्शन होना बहुत आवश्यक है। जैसे बीजके न होने पर अंकुर होना, बढ़ना और फल लगना नहीं होता वैसे ही सम्यग्दर्शन न होने पर ज्ञान और चारित्र भी नहीं होते। इसलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है। सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेने वाले, नरकगति और तिर्यञ्चगति में नहीं जाते, नपुंसक नहीं होते, छोटे कुलोंमें पैदा नहीं होते, लूले लंगड़े नहीं होते, कम आयुके नहीं होते और उन्हें दरिद्रता नहीं सताती। उनकी संसार पूजा करता है।

व्यवहार सम्यग्ज्ञान

जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही जानना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है।

जबतक सम्यग्दर्शन नहीं होता तबतक ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। सम्यग्ज्ञानमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये तीनों ही दोष नहीं होते।

यह सम्यग्ज्ञान सच्चे शास्त्रोंके पढ़ने, सच्चे गुरुओंका उपदेश सुनने और वस्तुके स्वरूपका बार-बार विचार करनेसे होता है जो ज्ञानी होते हैं वे संसारसे सदा उदासीन रहते हैं और वेही कर्मके बन्धन तोड़कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

व्यवहारसम्यकचारित्र

हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों तथा अन्य संसारके कारणरूप विषय-कषायोंका त्याग करना व्यवहार सम्यकचारित्र है।

संसारसे मोह दूर करने पर सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। ऐसी अवस्थामें रागद्वेष आदि विकारोंको नष्ट करनेके लिये आचरण करना ही सम्यकचारित्र कहलाता है।

मोक्षमार्ग

ये तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग है। जैसे कोई बीमार दवाई पर भरोसा न करे, दवाई न पहचाने या दवाई विधिके अनुसार नहीं खावे तो उसे आराम नहीं मिलता, तीनों करने पर ही आराम मिलता है वैसे ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंका धारण करना ही आत्माके कल्याणका अर्थात् मोक्षका कारण है।

जैसे—जंगलमें आग लगने पर केवल अन्धा, लँगड़ा, या आलसी ये तीनों अपनी रक्षा नहीं कर सकते वैसे ही केवल दर्शन, ज्ञान और चारित्रसे आत्माका कल्याण नहीं हो सकता। इसलिये मोक्ष अर्थात् सच्चा सुख पानेके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंका होना बहुत आवश्यक है।

दोनों स्वीकार करते हैं कि कठिनसे कठिन बीमारियाँ केवल उपवाससे दूर की जा सकती हैं।

डाक्टर बरनर मेकफेडन प्राकृतिक चिकित्साके बड़े विद्वान् हैं। अमेरिकामें आपका (College of Physicultotheraphy) है। उसमें सभी रोगोंको प्राकृतिक चिकित्साद्वारा आराम पहुँचाने की शिक्षा दी जाती है। आप "फिजिकल कलचर" आदि पत्रोंसे स्वास्थ्य पर प्रकाश डालते हैं और उपवास पर अधिक जोर देते हैं।

उनका स्वयं अनुभव है कि पहिले ही पहिले उपवास करनेमें कुछ कष्ट मालूम होता है किन्तु ३-४ दिन बाद भोजन करनेकी इच्छा भी नहीं होती। उपवासके दिनोंमें मानसिक परिश्रम अच्छी तरह किया जा सकता है। उपवास करनेके पहिले दिन ढाई सेर और दूसरे दिन दो सेर वजन कम हो गया, इस तरह सात दिनमें साढ़े सात सेर वजन घट गया। इन दिनोंमें भी लम्बी दौड़ लगाते थे और १००/१०० पाऊंडका डंबल उठाते थे। उनका कहना है कि उपवासमें शारीरिक शक्तिकी कमीका ख्याल करना भूल है।

मिस हालने लकवामे आराम पानेके लिये चालीस दिनका उपवास किया था, और उपवासके दिनोंमें ६।६ घन्टे काम किया करती थीं।

एक आदमीकी आंतमें घाव हो गया था। डाक्टरने नश्तर लगाये विना २।१ दिनमें मरनेका अंदेशा बताया था लेकिन उसे दस दिनके उपवाससे ही लाभ हो गया।

अमेरिकाके प्रसिद्ध उपन्यास लेखक मि० आप्टन सिंक्लेयर

सा० को मन्दाग्निका रोग था उन्हें १३-१४ दिन के उपवाससे आराम हो गया।

इंगलैंडके एक साठ वर्षके मनुष्यके खूनमें खराबी हो गई थी। इस समय इसका वजन पौने तीन मन था। पन्द्रह दिनके उपवासके बाद उसका वजन पौने दो मन रह गया और पूर्ण स्वस्थ हो गया।

रिचर्ड फाँसेलने तो नब्बे दिनका उपवास किया था। इन्हें जलोदर रोग हो गया था। इसके कारण इनका वजन लगभग पांच मन हो गया था। चलना फिरना कठिन हो गया। आप उपवासके बाद स्वस्थ हो गये।

कुष्ठ, दमा और क्षय जैसे भयंकर रोगभी उपवाससे दूर हो जाते हैं।

इसी प्रकार भारतमें भी डाक्टर शावक बी० मदन और वैद्य पं० रामेश्वरानन्दजी आदि अनेक उपवास चिकित्साके विशेषज्ञ हैं जिन्होंने सैकड़ों रोगियोंको कठिनसे कठिन रोगोंसे मुक्त कर जीवनदान किया है। २५।३० सालके भयंकर पुराने रोगभी केवल उपवाससे दूर किये जाते हैं।

भोजनका पचना और मलका बाहर निकलना बहुत आवश्यक है। ऐसा न होनेसे ही रोग पैदा होते हैं। उपवास करनेसे दोनों शक्तियां बराबर काम करने लगती हैं। शरीरकेभीतरका विष जब नष्ट हो जाता है तब अच्छी भूक मालूम होने लगती है।

उपवासके बादमें इन्द्रियोंमें विशेष स्फूर्त्ति उत्पन्न हो जाती है। साथ ही शारीरिक व मानसिक बल उन्नत होता जाता है।

अधिक क्या, पशु भी अस्वस्थ होने पर खाना पीना छोड़ देते हैं।

इस विषयकी जानकारी के लिये (Fasting for Health) और "उपवास चिकित्सा" आदि पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए।

इसलिये उपवास अथवा नियमित भोजन करना धार्मिक और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छा होनेके साथ ही राष्ट्र और समाजकी परिस्थितिका ध्यान रखने वालेके लिये भी अत्यन्त आवश्यक है।

अठारहवां

कर्म्म

चार अघातियाकर्म्म।

१. वेदनीयकर्म्म—जो कर्म्म जीवको सुख दुःख दे या सुख-दुःखकी सामग्री जुटा देवे। इस कर्मके उदयसे जीव किसी पदार्थको इष्ट और किसी पदार्थको अनिष्ट समझने लगता है और उससे सुख तथा दुःखका अनुभव करने लगता है। सुख और दुःख देना वेदनीय कर्म्मका ही काम है। जैसे बलबीर सिंहने शहद लपटी हुई तलवार चाटी। शहद चाटनेसे मीठा लगा तो सुख हुआ और तलवारसे जीभ कटने पर दुःख हुआ।

इसलिये वेदनीय कर्म दो प्रकार होता है—१. साता-वेदनीय और २. असातावेदनीय।

सातावेदनीयके उदयसे सुख देनेवाली सामग्री (वस्तु) मिलती है और दुःख देनेवाली वस्तु असातावेदनीयके उदयसे मिलती है।

सब जीवों पर दयाभाव रखना, व्रतोंका पालन करना,

आहारदान, ज्ञानदान औषधिदान और अभयदान करना, क्षमा धारण करना, लोभ नहीं करना और संतोष रखना आदि कार्योंसे सातावेदनीय कर्म्मका बन्ध होता है।

दुःख करना, शोक करना, पश्चात्ताप (पछताव) करना, ऐसे रोना जिसे सुन कर दूसरोंको रोना आजावे और मारना-पीटना वगैरहसे असातावेदनीय कर्म्मका बन्ध होता है।

२. आयुकर्म— इस कर्मके कारण आत्मा, नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य इन चार गतियोंमें, कोई एक शरीर धारण कर अपने कर्मानुसार किसी भी गतिमें, रुका रहना पड़ता है। जैसे एक मनुष्यके पॉव काठकी बेड़ीमे डाल दिये जाते हैं फिर वह इधर उधर नहीं चल फिर सकता। इसी प्रकार आयुकमके उदयसे नियतकाल तक मनुष्य आदि गतियोंमे शरीर धारण करता है। आयु बीतनेपर अपने २ कर्मोंके अनुसार नरक, तिर्यञ्च, देव अथवा मनुष्यगतिमें जन्म लेता है। यह आयु कर्मकी पराधीनता है। किसी भी एक गतिमें रोके रखना इसका काम है।

बहुत आरम्भ (सेवा, कृषि, व्यापार आदि) और परिग्रह (धनधान्य आदि) रखनेसे नरक आयुका बन्ध होता है। ऐसा करनेसे जीवको नरक गतिके दुःख उठाने पड़ेंगे।

छल-कपट करने, दूसरोंको ठगने, दगा करने और जाल-साजी आदि करनेसे तिर्यञ्च आयुका बन्ध होता है। ऐसा करनेसे पशु, पक्षी और वृक्ष आदिका शरीर धारण करना पड़ेगा। थोड़ा आरम्भ और परिग्रह रखने से, कोमल परिणामों-से, परोपकार करने और जीवोंपर दया आदि करनेसे मनुष्य-आयुका बन्ध होता है।

व्रत उपवास आदि करने, शान्तिपूर्वक भूख, प्यास, आदि सहने, और सत्यधर्मका प्रचार करने एवं उसको प्रभावना करनेसे देवायुका बन्ध होता है। ऐसे कामोंके करनेसे भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवोंमें जन्म होता है।

३. नामकर्म—के उदयसे अनेक प्रकारके शरीर, इन्द्रियां, अङ्ग (हाथ, पैर आदि) और उपाङ्ग (अंगुली आदि) आदि की रचना होती है। जैसे चित्रकार देव, नारकी मनुष्य और तिर्यञ्च (हाथी, मछली, तोता, पेड़ आदि अनेक प्रकार) के चित्र बनाता है ठीक उसी प्रकार नामकर्म भी सुरूप (सुडौल) और कुरूप (बेडौल), छोटे, बड़े आदि अनेक प्रकारके शरीर बनाता है। यह कर्म भी दो प्रकारका है। १ शुभ नामकर्म और २ अशुभ नामकम।

मन, वचन और कायको सरल रखने, किसीका बुरा न विचारने, और किसीका बुरा न करने, आपसमें लड़ाई नहीं करने और धर्मात्मा पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होने आदि से शुभ नामकर्मका बन्ध होता है।

मन, वचन और कायमें कुटिलता करने, मिथ्यात्वी होने, घमंड करने, आपसमें लड़ने,, मिथ्या देवोंकी पूजा करने, दूसरोंका बुरा बिचारने, दूसरोंकी नकल करने, चुगली खाने और दूसरोंको चिढ़ाने, तंग करने वगैरहसे अशुभनाम कर्मका बन्ध होता है।

किसीका सिर बड़ा और किसीका छोटा, किसीका हाथ लम्बा व किसीका छोटा, कोई लम्बा, कोई कूबड़ा, कोई चपटी (चीनी लोगों जैसी) नाकवाला और कोई तोता जैसी नाकवाला, कोई खुरपा जैसे दांत वाला और कोई सुन्दर दांतवाला कोई

राक्षस जैसा काला भयानक बदसूरत और कोई गोरा, मनोहर और सुरूप होता है। किसी का बन्दर जैसा मुंह और किसीका देव जैसा। यह सब नामकर्मकी महिमा है।

४. गोत्रकर्म—ऊंचे और नीचे कुलमें पैदा करता है। जैसे कुम्भकार (कुम्हार) छोटे और बड़े सब तरहके वर्तन बनाता है वैसे ही नामकर्म भी जीवोंको ऊंचा (बड़ा) और नीचा (छोटा) बनाता रहता है।

इसके दो भेद होते है—१ उच्चगोत्र और २ नीच गोत्र।

उच्चगोत्रकर्म—के उदयसे उत्तम आचरण करनेवाले लोकमान्य कुलमें उत्पन्न होता है।

नीचगोत्रकर्म—के उदयसे जीव बुरे आचरण करनेवाले लोकनिन्द्य कुलमें उत्पन्न होता है।

दूसरेके गुणोंकी प्रशंसा करने, अपनेसे अधिक गुणवालोंका आदर करने तथा अपनी विद्या, धन और गुण आदिका मान न करने आदिसे उच्चगोत्रका बन्ध होता है।

दूसरेकी निन्दा करने और अपनी प्रशंसा करने, सच्चेदेव, शास्त्र, और गुरुकी अविनय करने और अपनी जाति, कुल, विद्या, धन, शरीर और प्रभुता आदिका अभिमान करनेसे नीचगोत्रका बन्ध होता है।

बालको ! कर्मकी महिमा देखो। कर्म की महिमा के साथ कर्म (पुरुषार्थ) की महिमा का भी अनुभव करो। कर्म का अर्थ केवल भाग्य और पराये भरोसे ही रहना नहीं है। कर्म का अर्थ पुरुषार्थ भी है। पुरुषार्थ का आश्रय लेकर ही इस अपार संसार समुद्र से महावीर स्वामी आदि ने उद्धार पाया

है। वे कर्म और आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझ कर और कर्म को समूल नष्ट करने का अनुपम पुरुषार्थ कर, नित्य, निरञ्जन, निर्विकार तथा अनन्त ज्ञान और सुखके निधान बन गये।

~~~~~~

उन्नीसवां पाठ

गर्भकल्याणक।

(स्वर्गीय पं० रूपचन्द जी पांडे कृत)

पणविवि पंच परम गुरु, गुरु जिनशासनो।
सकल सिद्धिदातार सु, विघन विनाशनो॥
शारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकाशनो।
मंगलकर चउसंघहि, पाप पणाशनो॥
पापहि पणाशन गुणहि गरवा, दोष अष्टादश रह्यो।
धर ध्यान कर्म विनाश केवल, ज्ञान अविचल जिन लह्यो॥
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥१॥

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो।
अवधिज्ञान परवान, सु इन्द्र पठाइयो॥
रचि नव बारह योजन, नयरि सुहावनी।
कनक रयणमणि मण्डित, मंदिर अति बनी॥
अति बनी पौरि पगारि परिखा सुवेन उपवन सोहये।
नर नारि सुन्दर चतुर भेख सु, देख जन मन मोहये॥
तहां जनक गृह छह मास प्रथमहिं रतन धारा वरषियो।
पुनि रुचिकवासिनि जननि सेवा, करहिं सब विधि हरषियो॥
~~~~~~

सुरकुंजरसम कुजर धवल धुरंधरो ।
केहरि केसर शोभित, नखशिख सुंदरो ॥
कमलाकलश-न्हवन दुइ दाम सुहावनी ।
रवि शशिमंडल मधुर मीन जुगपावनी ॥
पावनि कनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमर विमान फणपति भवन भुवि छवि छाजये ॥
रुचि रत्नराशि दिपन्त दहन सु, तेजपुंज विराजये ॥३॥
ये सखि सोलह सुपनसूती सयनही ।
देखे माय मनोहर पश्चिम रयनही ॥
उठि प्रभात प्रिय पूछियो अवधि प्रकाशियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी फल तिहिं भासियो ॥
भासियो फल तिहिं चिंति दम्पति, परम आनंदित भये ।
छह मास परि नवमास पुनि तहँ, रयनदिन सुखसो गये ॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भनि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥४॥

बीसवां पाठ

जन्म कल्याणक ।

मति सुत अवधि विराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहुँ लोक भयो छोभित सुरगण भरमियो ॥
कल्पवासि घर घंट, अनाहद वज्जियो ।
जोतिष घर हरिनाद सहज गल गज्जियो ॥
गज्जियो सहजहिं संख भावन भुवन सबद सुहावने ।
विंतर निलय पटुपटह वज्जहि, कहत महिमा क्यों बने ॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन, जन्म निहचै जानियो ।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो ॥५॥

जोजन लाख गयंद, वदन सौ निरमये ।
वदन वदन वसु दंत दन्त सर संठये ॥
सर सर सौपणवीस, कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि, कमलिनि कमल पचीस विराजहीं ॥
राजहीं कमलिनि कमल अठोत्तर-सौ मनोहर दल बने ।
दल दलहि अपछर नटहि नवरस, हाव भाव सुहावने ॥
मणि कनक किंकणि वर विचित्र, सु अमर मंडप सोहये ।
घन घण्ट चवर ध्वजा पताका, देख त्रिभुवन मोहये ॥६॥
तिहिं करि हरि चढ़ि आयउ सुरपरिवारयो ।
पुरहि प्रदच्छन देत सुजिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिनजननिहिं सुखनिद्रा रची ।
मायामय शिशु राखि, तो जिन आन्यो शची ॥
आन्यो शची जिन-रूप निरखत, नयन तृपत न हूजिये ।
तब परम हरषित हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये ॥
पुनि कर प्रणाम सु प्रथम इन्द्र उछंगधरि प्रभु लीनऊ ।
ईशान इन्द्र सुचन्द्रछवि सिर छत्र प्रभु के दीनऊ ॥७॥
सनतकुमार महेंद्र चमर दुइ ढारहीं ।
शेष शक्र जयकार, सबद उचारहीं ॥
उच्छव सहित चतुरविधि, सुर हरषित भये ।
जोजन सहस निन्यानवे, गगन उलंघि गये ॥
लंघिगये सुरगिरि जहां पाडुक-वन विचित्र विराजहीं ।
पाँडुक-शिला वहां अर्द्धचन्द्रसमान मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम वसु ऊंची गनी ।
वर अष्ट मंगल कनक कलशनि, सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥
रचि मणिमंडप शोभित मध्य सिंहासनो ।
थाप्यो पूरवमुख तहां, प्रभु कमलासनो ॥

बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुंदुभि प्रमुख मधुर धुनि, और जु बाजने ॥
बाजने बाजहिं शची सब मिलि, धवल मंगल गावही ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि क्षीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुरगन ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ईशान इन्द्र सु, कलश ले प्रभु न्हावहीं ॥९॥

वदन-उदर अवगाह, कलशगत जानिये ।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥
सहस अठोत्तर कलशा, प्रभु के सिर ढरे ।
पुनि श्रृङ्गार-प्रमुख, आचार सबइ करे ॥
करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहि दियो ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गयो ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भन 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥१०॥

इकीस्सवां पाठ

देवशास्त्रगुरुपूजा

ॐ जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥
ॐ अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः ।
(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहूमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा-अरहन्त लोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहन्तसरणं पव्वज्जामि, सिद्ध-

मरणं पव्वज्जामि साहूसरणं पव्वज्जमि, केवलिपण्णत्तो धम्मो मरणं पव्वज्जामि ॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा ।

(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

अडिल्ल छन्द ।

प्रथम देव अरहन्त, सुश्रत सिद्धान्त जू ।
गुरु निरग्रन्थमहन्त मुकतिपुरपंथ जू ॥
तीन रतन जगमांहि, सु ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्तिप्रसाद, परमपद पाइये ॥१॥

दोहा ।

पूजों पद अरहन्त के, पूजों गुरुपद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्ट प्रकार ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

गीताछन्द ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, बन्दनीक सुपदप्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देखि छवि मोहित सभा ॥
वर नीर छीर समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥१॥

दोहा ।

मलिनवस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव-मल-छीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वा०

जे त्रिजगउदरमझार प्रानी तपत अति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरण सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥

वसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन; सरस चन्दन घसि सचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥

दोहा।

चन्दन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वा०

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठही।
अति दृढ़ परमपावन अथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल-पुंज धरि त्रय गुण जचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥३॥

दोहा।

तंदुल शालि सुगन्ध अति, परम अखण्डित बीन।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन॥३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० स्वाहा।

जे विनयवन्त सुभव्य-उर-अंबुज-प्रकाशन भान हैं।
जे एक मुखचारित्र भाषत, त्रिजगमांहि प्रधान हैं॥
लहि कुन्दकमलादिक पहुप भव भव कुवेदन सों बचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥४॥

दोहा।

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजा परमपद देव शास्त्र गुरु तीन॥४॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि० स्वाहा।

अति सबल मद कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग-अमान है।
दुस्सह भयानक तास नाशन, को सु गरुड़ समान है॥
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं॥५॥

दोहा।

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परम पद देव शास्त्र गुरु तीन ॥५॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वा०।
जे त्रिजगउद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली।
तिहिं कर्म घातक ज्ञानदीप, प्रकाश जोति प्रभावली॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूं
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥६॥

दोहा।

स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥६॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वा०।
जा कर्म-ईंधन दहन, अग्नि समूहसम उद्धत लसै।
वर धूप तास सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हंसै॥
इहि भांति धूप चढ़ाय नित, भव-ज्वलनमांहि नहीं पचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं।७॥

दोहा।

वसुविधि अर्घ संजोय के, अतिउछाह मन कीन।
जासों पूजो परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।७॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि० स्वाहा।
लोचन सुरसना घ्राण उर उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरनी, सकल फल गुण सार हैं।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, सकल अमृतरस सचूं
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥८॥

दोहा।

जे प्रधान फल फल विषैं, पंच करण रस लीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
जल परम उज्जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूं ।
वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनम के पातक हरूं ।
इह भांति अर्घ चढ़ाय नित, भव करत शिवपंकति मचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूं ॥९॥

दोहा ।

वसुविधि अर्घ संजोय के, अतिउछाह मन कीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार ॥

पद्धरी छन्द ।

कर्मनकी त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश-दोष राशि। जे परम सुगुण हैं अनन्त धीर, कहवतके छयालिस गुण गम्भीर ॥ २ ॥ शुभ समवशरण शोभा अपार, शतइन्द्र नमत कर शीश धार। देवाधिदेव अरहन्त देव, बन्दों मनवचतनकरि सुसेव ॥ ३ ॥ जिनकी ध्वनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप। दशअष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सातशतक सुचेत ॥ ४ ॥ सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सुअङ्ग। रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥ ५ ॥ गुरु आचारज उवझाय साध, तन नगन रतनत्रय निधि अगाध। संसार देह वैराग्य धार, निरवांछि तपै शिव पद

निहार ॥६॥ गुण छत्तिस पच्चिस आठ बीस, भवतारनतरन जिहाज ईस। गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन वचन काय ॥७॥

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' श्रद्धावान, अजर अमरपद भोगवै ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

शान्तिपाठ।

शांतिनाथमुख शशिउनहारी, शीलगुणव्रतसंजमधारी। लखन एकसौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं ॥१॥ पंचमचक्रवर्तिपदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी। इन्द्रनरेन्द्रपूज्य जिनायक, नमो शांतिहित शाँतिविधायक ॥२॥ दिव्य विटपपहुपन की बरसा, दुंदुभि आसन वाणी सरसा। छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुम प्रातिहार्य मनहारी ॥३॥ शांति जिनेश शांतिसुखदाई, जगतपूज्य पूजों सिर नाई। परमशांति दीजै हम सबको, पढ़ैं जिन्हें पुनि चार संघको ॥ ४ ॥

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके,
इन्द्रादिदेव, अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शांतिनाथ वरवंशजगत्प्रदीप,
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥ ५॥

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको, यतीनको औ यतिनायकोंको।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले, कीजे सुखी हे जिन शांतिको दे ॥६

होवे सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो धर्म-धारी नरेशा।
होवै वर्षा समैपै, तिल भर न रहै, व्याधियोंका अंदेशा ॥
होवै चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी ॥
सारे ही देश धारैं, जिनवरवृषको, जो सदा सौख्यकारी ॥७॥

घाति कर्म जिन नाश कर, पायो केवल राज ।
शांति करैं ते जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥८॥

मन्दाक्रान्ता ।

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का ।
सद्वृत्तोंका सुजस कहके दोष ढांकूं सभी का ॥
बोलूं प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊं ।
तौलों सेऊं चरन जिनके, मोक्ष जौलौं न पाऊं ॥९॥

आर्या

तवपद मेरे हियमें, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में ।
तबलों लीन रहे प्रभु, जबलौं प्राप्ती न मुक्तिपदकी हो ॥१०
अक्षर पद मात्रा से, दूषित जो कछु कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ाहु भवदुखसे ११
हे जग बन्धु जिनेश्वर, पाऊं तव चरणशरण बलिहारी ।
मरणसमाधि सुदुर्लभ, कर्मोंका क्षय सुबोध सुखकारी ।१२।

(परि पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

विसर्जन पाठ ।

दोहा ।

विन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय ।
तुम प्रसादतें परमगुरू, सो सब पूरन होय ॥१॥
पूजनविधि जानूं नहीं, नहिं जानूं आह्वान ।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान ॥२॥
मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रिया हीन जिन देव ।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणकी सेव ॥३॥
आये जो जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमान ।
ते अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥४॥

हर्ष ! परमहर्ष !!

पाठकों
कुन्दका सम
नहीं मिल
बराबर ख
पत्र प्र
को प्र
इसी
'स
ग्राह
परन
कर
भी
मह
ग्रंथ
औ
उन्हें

उठा